सांस्कृतिक कहानियाँ

भाग २

सुदर्शन सिंह चक्र

सांस्कृतिक कहानियाँ

(भाग २)

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्राप्ति-स्थान—
प्रकाशन विभाग
श्रीकृष्ण - जन्मस्थान - सेवासंघ
मथुरा-२८१००१ (उ० प्र०)

प्रकाशक	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
प्रकाशन-तिथि	श्रावण, वि० सं० २०३४ जुलाई, १९७७
प्रथम संस्करण	५००० प्रतियाँ
मुद्रक	राधा प्रेस, गान्धीनगर, दिल्ली-११००३१

SANSKRITIK KAHANIYAN — Part II
—Sudarshan Singh 'Chakra'

मूल्य—दो रुपया मात्र

अनुक्रमणिका

काम (ऐन्द्रिय भोगों) का प्रयोजन

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।।

श्रीमद्भा० १.२.१०

'वरं ब्रूहि !' उस दिन उस नीरव रात्रिमें पता नहीं क्यों उसकी निद्रा टूट गयी। वैसे वह इतनी गाढ़ निद्रा सोता है कि सिरपर ढोल बजे तो कदाचित् नींद टूटे। पूरा कक्ष प्रकाशित था और एक देवता उसके समीप खड़े थे। देवता इसलिए कि प्रकाश उनके शरीरसे ही निकल रहा था—जैसे किसी धुएँके समान प्रकाशित पदार्थके द्वारा उनकी देहका निर्माण हो। साथ ही वे उसे वरदान माँगनेको कह रहे थे—वरदान माँगनेको या तो कोई देवता कहेगा या ऋषि। वे ऋषि नहीं हो सकते, क्योंकि ऋषियोंके जटा-जूट होते होंगे और वे इतने रत्नाभरण धारण क्यों करने लगे।

'धन्यवाद !' वह भी अद्भुत अक्खड़ है—ऐसा कि आपको ऐसे अक्खड़ जीवनमें कम मिले होंगे। शय्यापर उठकर बैठ गया था वह ; किंतु उसने उठकर खड़े होने, देवताकी वन्दना-अभ्यर्थना करनेका कोई उपक्रम नहीं किया। भय भला क्या लगना था—जो

वरदान माँगनेको कह रहा था, उससे भयकी तो कोई बात भी नहीं। वैसे भी उसे भय लगता होता तो सर्वथा एकाकी पर्वतपर अन्य गृहोंसे दूर वह आवास स्वीकार नहीं करता।

'मैंने तो आपको बुलाया नहीं था। आपसे कभी कोई प्रार्थना मैंने भूलसे भी नहीं की होगी।' देवता खड़े थे और अपने शयनके आसनपर बैठे-बैठे ही वह उनसे कहे जा रहा था। साथ ही ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपरतक देवताको देख रहा था बार-बार ; उसने जो पढ़ा-सुना है, उसमेंसे कोई लक्षण मिल जाय तो देवताको वह पहचान ले। देवताके चरण भूमिका स्पर्श नहीं कर रहे थे—इसके अतिरिक्त और कोई लक्षण उसे ऐसा नहीं मिला, जिससे वह उनका नाम जान सकता। अतः बोला—'आपको स्वीकार हो तो आसन ग्रहण कर लें और मैं जल पिला दे सकता हूँ।'

परिचय उसने पूछा नहीं। नाम-धाम-काम, वह किसीसे भी मिले, पूछना उसके स्वभावमें नहीं है। लोग उससे पूछते हैं तो उसे झल्लाहट ही होती है ; किंतु देवता—देवताका परिचय जानना भी उसे आवश्यक नहीं लगा। अपने तख्तेपर (क्योंकि वह तख्तेपर ही सोया था) एक ओर थोड़ा खिसक गया, जैसे देवताको बैठना हो तो उसीके बराबर बैठ जाय। ऐसे देवताको आसन दिया जाता है ? देवता क्या प्यासा आया होगा उसके यहाँ पानी पीने ? किंतु यह बात भी सच है कि उसके पास देवताको भेंट करनेके लिए उस समय कुछ नहीं था।

दूसरा तख्ता भी कमरेमें नहीं था और न मुखमें डाला जा सके, ऐसा कोई पदार्थ था। रात्रिमें पुष्पका तो प्रश्न हो नहीं उठता। आप कह सकते हैं—'उसे उठकर खड़े हो जाना था। जल हाथमें लेकर निवेदन करना था।' यह सब उसने नहीं किया। उसे यह आवश्यक नहीं जान पड़ा।

'वरं ब्रूहि!' देवताने भी जैसे दूसरा वाक्य सीखा ही न हो। उन्होंने आसन ग्रहण नहीं किया। जलकी उन्हें आवश्यकता नहीं थी। वैसे देवताको सदा मनुष्यके दानकी आवश्यकत्ता होती है। मानवका श्रद्धा-दान, हव्य-कव्य न मिले तो स्वर्ग और पितृलोकमें दुर्भिक्ष पड़ जाय। इसलिए देवताको मनुष्यसे अपेक्षा नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।। गीता ३.११

मनुष्य देवताओंको तृप्त करे हवन-पूजनादिसे और देवता यथावत् वृष्टि, वायु, महामारी आदिका नियन्त्रण करके मनुष्यको सुखी-समृद्ध बनाते रहें—व्यवस्था यही है। केवल परमात्मा पूर्णकाम, नित्य निरपेक्ष है। उसे मनुष्य जो कुछ देना चाहता है—देनेका उद्योग करता है, वह अनन्तगुणित होकर लौट आता है उसीके समीप; किंतु देवता तो ऐसे नहीं हैं। अतः उसका भाव था—'तुम वरदान देने आये—मुझे वरदान चाहिए कि नहीं, यह भिन्न प्रश्न है; किंतु मैं तुम्हें जल पिला दे सकता हूँ, यदि तुम पाना चाहो।'

देवताको प्यास नहीं होगी। पर्वतोंमें ग्रीष्ममें भी शीत रहता है। वहाँ रात्रिमें उसे भी प्यास कभी नहीं लगती और सुना है कि देवताओंकी क्षुधा-पिपासा मनुष्यसे सर्वथा भिन्न होती है। वे भोज्य वस्तुओं एवं जलको भी केवल सूँघकर तृप्त होते हैं। मुखसे खाने-पीनेकी आवश्यकता उन्हें नहीं होती।

देवता भी हो और चोर भी हो, ऐसा नहीं हुआ करता। इसलिये जबतक कोई मनुष्य अपनी ईमानदारी-से उपार्जित वस्तुको देवताके अर्पण न करे अर्थात् श्रद्धा-प्रेमसे अपने ठीक स्वत्वकी वस्तुको ग्रहण करनेका अधिकार देवताको न दे, देवता कोई पार्थिव वस्तु ग्रहण नहीं कर सकता—उसे सूँघ नहीं सकता। उसने देवताको जल पिलानेकी बात कही थी। देवता प्यासा होता तो उसके लोटेमें भरे जलको बिना स्पर्श किये घ्राण-ग्राह्य बना ले सकता था।

'वरं ब्रूहि!' देवताको पता नहीं क्यों वरदान देनेकी धुन चढ़ी थी और वह चाहता था कि वरदान देकर झटपट चला जाय; किंतु जिसे वरदान लेना था, उसे कोई शीघ्रता या तत्परता उसमें नहीं जान पड़ती थी।

× × ×

'वह कौन है?' आप अवश्य जानना चाहते होंगे; किंतु नाम-धाम-काम कोई पूछे तो उसे झल्लाहट होती है। कहता है—'व्यक्तिका क्या परिचय? कल उत्पन्न

हुआ, परसों मर जायगा। मिट्टीके डलेको एक आकार मिल गया—इस खिलौनेका भी कोई परिचय हुआ करता है ?'

'तुमने साधुवेष क्यों ग्रहण नहीं किया ?' एक महात्माने उससे एक बार पूछा था। पूछना उचित था ; क्योंकि जिसके कुल-परिवारमें कोई नहीं, जिसकी कहीं कोई झोंपड़ीतक नहीं, वह क्यों अपनेको गृहस्थ कहता है ? वह धोती, कमीजमें क्यों रहता है ? समाजकी वर्तमान परिपाटीको देखते उसे ऐसे ढंगसे क्यों रहना चाहिए ?

'मैं क्यों साधुवेष ग्रहण करता ? क्या प्रयोजन था इसका ?' उसने प्रश्नके उत्तरमें प्रश्न कर लिया था। कहा न कि वह अद्भुत अक्खड़ है। कहने लगा—'सहज प्राप्त 'क्यों है ?' यह प्रश्न अनुचित है। 'उसमें परिवर्तन क्यों किया जाय ?' प्रश्न यह ठीक है।'

'दूसरे साधुवेष किसी प्रयोजनसे ग्रहण करते हैं ?' महात्माने पूछा।

'दूसरोंकी बात मैं कैसे कह सकता हूँ।' वह बोला। 'वैसे साधुवेष-ग्रहणके चार प्रयोजन मेरी समझमें आते हैं। उत्तम प्रयोजन—संसारसे वैराग्य हो गया हो और कुटुम्ब-परिवारका बन्धन अन्तर्मुख होनेमें बाधा दे रहा हो। मध्यम प्रयोजन—आसक्ति कहीं हो नहीं और साधन-भजन करनेमें पूरा समय लगाना हो। शरीर-निर्वाहके लिए अप्रयास भिक्षा मिल जाया करे। निकृष्ट

प्रयोजन—योग्यता हो या न हो, किंतु दूसरोसे सम्मान पाने, पैर पुजवानेकी इच्छा प्रबल हो। अधमतम प्रयोजन—सम्मान सम्पत्ति, भोग भरपूर चाहिए; किंतु कुछ उद्योग करनेकी इच्छा-शक्ति न हो।'

जिसके कुटुम्ब-परिवार, घर-द्वार, कोई है ही नहीं, उसके लिए इस बन्धनसे छुटकारेका प्रश्न नहीं उठता था। शरीर-निर्वाहके लिए उसे जितना कम श्रम करना पड़ता है, जितनी स्वच्छन्दता उसके श्रममें हैं, उतना तो भिक्षाजीवीको भी करना ही पड़ता है। सम्मान उसे सहज प्राप्त है और संग्रहकी सनक उसे है नहीं। वह कहता है—'मैं प्रायः अस्थिर रहता हूँ। एक तौलिया भी अधिक रख लूँ तो उसे ढोते फिरना होगा। बात त्यागकी नहीं है, समझदारीकी है। जितनेसे ठीक-ठीक जीवन-निर्वाह हो जाता है—सुखसे, सुविधासे, सामाजिक शिष्टताको रखते हो जाता है, उतना रखता हूँ। अधिक-को ढोते फिरनेकी मूर्खता नहीं कर सकता।'

अब किसके मुखमें दो हाथकी जिह्वा है कि उससे कहेगा--'बिना साधुवेष लिये ज्ञान नहीं होता या भगवत्प्राप्ति नहीं होती।

'भाई मेरे! ज्ञान या भगवद्दर्शन मनुष्यको होता है, कपड़ेको नहीं,—यह उसकी बात ठीक नहीं है; ऐसा तो न कोई शास्त्र कहता और न किसी संतने कभी कहा है।'

'भोगे रोगभयं'—अधिक जिह्वा-लोलुप बनोगे तो पेट खराब हो जायगा और सामान्य रसास्वादके सुखसे भी वञ्चित कर दिये जाओगे !

अधिक काम बढ़ेगा तो वह शक्ति प्रकृति छीन लेगी। स्नायु-दौर्बल्य, हृदय-दौर्बल्य एवं और पता नहीं कितने कष्टसाध्य—असाध्य रोगोंकी भीड़ खड़ी है कि तुम इस ओर बढ़ो और वे बलात् तुम्हारी देहको अपना आवास बना लें।

'भोग जीवनके लिए हैं, जीवन या देह भोगके लिए नहीं है।' यह या ऐसी बातें हम-आप सबने पढ़ी-सुनी हैं। इसको जीवनमें किसने कितना अपनाया है, यह भिन्न बात है। किंतु यह सत्य तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जिसने जितना अधिक इन्हें अपनाया है, उतना स्वस्थ एवं सुखी है वह। जिसने जितनी इनकी उपेक्षा की है, वह उतना रोगी—दुखी है।

उसका अपना ढंग है। कहता है—'अनावश्यक संग्रह करके उसकी चिन्ता करते रहना और उसे ढोते फिरना मूर्खता है। मैं अपने आपको स्वयं मूर्ख नहीं बना सकता। इससे भी बड़ी मूर्खता है किसी इन्द्रियके पीछे इतना पड़ना कि उसकी शक्ति—उसकी उपयोगिता ही नष्ट हो जाय। एक समय जीभके बहकावेमें जो आया—दूसरे समयके उपवाससे हा उसका छुटकारा हो जाय तो बहुत कुशल हुई। अन्यथा पेट-दर्द, सिरदर्द आदि पता नहीं क्या-क्या उपहार सिर पड़ने वाले हों।'

'इन्द्रियाँ शैतानकी पुत्रियाँ हैं। इनके बहकावेमें आये और यहीं रोगोंका नरक तैयार।' उसका अपना विवेचन है। 'इन्द्रियोंकी तृप्ति तो कभी होनेकी नहीं, यह वे कहते हैं जो इनका स्वभाव बिगाड़ देते हैं। अन्यथा इन्द्रियोंका काम तो इसको—अपने विषयको व्यक्त करनामात्र है। जीवनके लिए जितना उपयोगी है—उतना रस-पदार्थ-भोगसेवन समझदारी है।'

× × ×

'वरं ब्रूहि !' अब ऐसे व्यक्तिको वरदान देने देवता आ गये हैं। क्यों आ गये हैं, यह बात तो वे ही जानते होंगे। देवताओंको भी सम्भव है कि ऐसा कुछ व्यसन होता हो।

'आप क्या दे सकते है ?' उसने देवताकी ओर ऐसे ढंगसे देखा कि उस दृष्टिमें जिज्ञासाका भाव तो सर्वथा नहीं था।

'धन-रत्न, बल-यश, पद-प्रभुत्व, सिद्धियाँ !' देवताके स्वरमें गम्भीरताके स्थानपर उल्लास अधिक था। जैसे वरदान उसे न मिलकर स्वयं देवताको मिलनेवाला हो—'एवं स्वर्गसे सम्बन्धित गन्धर्वादि लोकोंमें जो प्राप्य है, वह भी।'

'अच्छा, तो तुम मुझे मूर्ख बनाने आये हो ?' वह खुलकर हँसा। अच्छा हुआ; क्योंकि सम्भावना इसकी भी थी कि वह क्रुद्ध हो जाता और देवताको झिड़क

देता। किंतु देवताको 'आप'के स्थानपर वह 'तुम' तो कहने ही लगा था।

'ऐसा तो नहीं है।' देवता भी चौंका। उस बेचारे देवताको भी ऐसा व्यक्ति कभी मिला नहीं होगा। उसने बड़े गम्भीर भावसे कहा—'प्रतिभा, कला, विद्याका वरदान भी चाहो तो माँग सकते हो।'

'अनावश्यक पदार्थ और पैसा जैसे भार है, वैसे ही विद्या-प्रतिभा भी भार ही है।' उसने देवताकी ओर ऐसे देखा, जैसे किसी मित्रको समझा रहा हो—'तुम देख रहे हो कि ऐसी कोई आवश्यकता जीवनके लिए नहीं है, जो मुझे उपलब्ध नहीं है। जीवनके लिए जो पदार्थ, जो धन, जितनी बुद्धि-विद्या आवश्यक है, मेरे पास वह है। मुझे इससे अधिकका लोभ नहीं है।'

'सिद्धियाँ......' देवताने कहना चाहा।

'बको मत!' बेचारे देवताको डाँट दिया गया। 'मैं मनुष्य हूँ। पक्षी आकाशमें उड़ते हैं और मछली जलमें डूबी रहती है। चींटी नन्ही है और हाथी भारी। तुम्हारी ऐसी कौन-सी सिद्धि है, जो किसी पशु-पक्षी अथवा कृमिमें सहज नहीं है? मनुष्यके मनमें तुम प्रकारान्तरसे पशु-पक्षी या कीटके गुणका लोभ उत्पन्न करना चाहते हो!'

'मनुष्यको भी पद-प्रतिष्ठाकी स्पृहा होती है।' देवता पता नहीं क्यों डाँट खाकर भी रुष्ट नहीं हुआ था। वह सम्भवतः असफल होकर जानेको उद्यत नहीं था।

उसने कहा—'आपके समीप सामग्री थोड़ी ही है। शरीर सदा स्वस्थ ही रहे, इसका आश्वासन नहीं है। आपको इस ओरसे मैं निश्चिन्त कर दे सकता हूँ।'

आश्चर्यकी बात यह है कि डाँटे जानेके पश्चात् देवताने उसे 'तुम'के स्थानपर 'आप कहना प्रारम्भ कर दिया था ; किंतु इस ओर उसने ध्यान नहीं दिया। वह कह रहा था—'तुम देवता हो ; अतः तुम्हें जानना चाहिये कि मेरे लिए मेरे स्वास्थ्य और मेरे संग्रहका क्या अर्थ है। मेरे शरीरकी शक्ति, मेरी बुद्धि, मेरी विद्या कितनी अल्प है—यह तुमसे अज्ञात नहीं होना चाहिए। इतना होनेपर भी मेरी निश्चिन्तता, मेरी सुव्यवस्था तुम देख सकते हो।'

'किंतु यह सब तो इस समय है।' देवताने बड़े संकोचसे कहा। 'भाग्य अबतक आपपर सानुकूल रहा है।'

'किसका भाग्य सानुकूल रहा है ?' उसने व्यंगपूर्वक पूछा। 'परिवार, परिच्छद, पाथेय एवं अध्ययनका उच्छेद सानुकूल प्रारब्ध ही किया करता है ?'

देवताको भी नहीं सूझ रहा था कि वह इसका क्या उत्तर दे। वह मौन रह गया। दो क्षण रुककर उसने कहा—'तुम देवता सही, तुम्हारी दिव्य दृष्टिकी भी सीमा है। तुम उस नटखटको नहीं देख सकते, यह तुम्हारा दोष तो नहीं है। तुम जानते हो ?'

कोटि-कोटि विश्वोंके वैभवकी अधिदेवी—
इन्दिरा बद्धकर दूर खड़ी चरणोंसे
चाहती है क्षुद्रतम सेवाका सम्मान !
थर-थर काँपते हैं चरण महाकालके—
जिसके भ्रूभङ्गसे,
कन्हाई वह मेरा है !
तुम दोगे मुझको वरदान ?

'देव !' जैसे कोई बड़ी भूल हो गयी हो—देवता इस प्रकार केवल एक शब्द बोल सका और क्योंकि वह देवता था, उसे वहीं अदृश्य होनेमें कहाँ क्षण लगना था।

'स्वप्न भी कैसे-कैसे आते हैं !' वह सवेरे कह रहा था। जब उसे ही स्मरण नहीं कि रात्रिमें वह सचमुच उठकर बैठा था या उसने स्वप्न ही देखा था, तब ठीक बात क्या है, कैसे कही जा सकती है।

'ठीक बात इसमें इतनी अवश्य है' वह कहता है—'समस्त भोग जीवनके लिए हैं—मनुष्यको यह तथ्य ठीक समझमें आ जाय तो उसे न इन्द्रियाँ मूर्ख बना सकतीं और न कोई देवता। मनुष्य जब इस सत्यको छोड़कर इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लोभमें पड़ता है, उसे केवल मूर्ख ही नहीं बनना पड़ता, रोगी बनना पड़ता है और कष्टोंकी परम्परामें जकड़ा जाकर विवश हो जाना पड़ता है।'

जीवनका प्रयोजन

'जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ।।'

श्रीमद्भा० १.२.१०

'अमर वस्तुतः अमर हैं क्या !' ऋषि-पुत्र शुक्लवीतिके अन्तरमें अचानक प्रश्न उठा । प्रश्न अचानक ही उठा करते हैं और वे धन्य हैं, जिनके अन्तरमें प्रश्न उठते हैं ; क्योंकि प्रश्नोत्थान विवेकके प्रबोधका लक्षण है । प्रश्न या तो पूर्ण पुरुष—आप्तकाम महापुरुषके मनमें नहीं उठते या पामरके मनमें ।

'शक्रकी कितनी आयु है ?' ऋषि-पुत्र अल्पवयस्क सही, जन्मसे इतने शुद्धान्तःकरण थे कि अर्थ-काम-सम्बन्धी प्रश्न उन्होंने शैशवमें भी नहीं पूछे । लौकिक वस्तुओंके सम्बन्धमें उन्हें कोई कुतूहल नहीं था । उपनयन-के पश्चात् पिताने उन्हें महर्षि जैमिनिके समीप अध्ययनके लिए भेज दिया था । अब तो उन्होंने पूर्व-मीमांसाके उन आचार्यसे कर्मका रहस्य समझना प्रारम्भ कर दिया था । वेदोंकी मन्त्र-संहिताएँ उन्हें सस्वर कण्ठस्थ हो गयी थीं । अपने गुरुदेवके अतिरिक्त वे किससे प्रश्नका समाधान कराने जाते ।

'एक महायुग अर्थात् एक चतुर्युगीका परिमाण तुम जानते हो।' महर्षिने अभी प्रश्नको गम्भीर भावमें लिया नहीं था। उन्होंने सामान्य उत्तर दिया—'एक कल्पमें सहस्र महायुग होते हैं ओर उसमें चौदह मन्वन्तर व्यतीत होते हैं। एक मन्वन्तरका एक इन्द्र होता है।'

'इसका अर्थ कि अमराधिप भी वस्तुतः अमर नहीं हैं। देवता भला कैसे अमर हो सकते हैं!' शुक्लवीतिके स्वरमें क्लान्ति थी।

'वत्स! अमरत्वका अर्थ दीर्घायुमात्र है!' महर्षिने अब शिष्यकी ओर ध्यान दिया। 'कालका अतिक्रमण कोई व्यक्तित्व नहीं कर सकता। जगत्स्रष्टाकी आयु ही जब दो परार्ध है, उनकी सृष्टिका कोई प्राणी नित्य अमर कैसे हो सकता है? देवत्व कर्म प्राप्य है और कर्मका वेग जिसका भी निर्माण करेगा—शाश्वत नहीं होगा वह, कर्मका वेग समाप्त होनेपर उस कर्मसे जो निर्मित हुआ, उसका विशीर्ण हो जाना सहज स्वाभाविक है। इसीलिए कर्म ही गुरु है। कर्म ही महान् है। कर्म ही ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति-स्थितिका हेतु है।'

कर्ममीमांसाके महाचार्य सम्भवतः और कुछ कहते; किंतु उन्होंने देखा कि उनका शिष्य इस समय कुछ अधिक सुननेकी स्थितिमें नहीं है। वह अन्तर्मुख न भी हो गया हो, उसके नेत्र यज्ञीय कुण्डसे उठते सुरभित धूम्र-पर स्थिर हो गये हैं। जैसे वह उस धूम्रकी कुण्डलियोंमें अपने प्रश्नका उत्तर ढूंढ़ रहा हो।

शान्त—अतक्र्य आनन्दसे पूर्ण शान्तिसे परिपूत तपोवन। स्वच्छ गोमयोपलिप्त भूमि है दूरतक। मध्यमें एक विशाल यज्ञमण्डप है और उससे थोड़ा हटकर कुछ पर्णशालाएँ हैं। एक पर्याप्त विशद पर्णकुटी है उनमें। सम्भवतः वह महर्षिका आवास है।

प्रातःकालीन हवन समाप्त करके छात्र कुश, समिधाएँ, फलादि संग्रह करने जा चुके हैं। दो-तीन, जो आश्रममें हैं भी, वे आश्रम-धेनुओंकी सेवामें लगे हैं अथवा नीवार-परिशोधनका कार्य कर रहे हैं। यज्ञशालामें वेदिकाओंपर इस समय कोई सामग्री नहीं है। अवश्य ही क्रमबद्ध मृगचर्म आस्तृत हैं और कुश-प्रकीर्ण है लगभग पूरा यज्ञमण्डप। आश्रममें मृग, धेनु, वृषभोंके साथ वृक्षों-के नीचे एक सिंह-युगल भी आ बैठा है और उसके तीनों शावक मृग-शिशुओंके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं।

यज्ञमण्डपमें दो-तीन बछड़े एवं एक-दो मृग-शावक आ गये हैं। वे क्रीड़ापूर्वक आस्तीर्ण कुशोंको सूँघते हैं, मुखमें लेते हैं और स्वच्छन्द फुदकते हैं। इस समय उन्हें स्नेहसे रोकनेवाला भी कोई नहीं है। वे जानते हैं कि शुक्लवीति तो उन्हें तब भी नहीं रोकेगा, जब वे उसकी जटाएँ मुखमें लेकर तृणके समान खींचनेका यत्न करेंगे। वह तो केवल देख लेगा उनकी ओर और बहुत हुआ तो हँस देगा।

महर्षि—द्वितीय अग्निके समान यज्ञीय कुण्डके समीप वेदिकापर आस्तीर्ण मृगचर्मपर पद्मासनासीन तेजोमय

वपु महर्षि तो आश्रमके कुलपति हैं। पशु ही नहीं, नन्हे पशु-शावक भी समझते हैं कि महर्षि पिता हैं, श्रद्धेय हैं। उनके समीप पहुँचकर कोई बछड़ा भी चपलता नहीं करता। उनके चरणोंको सूँघ लेनेमात्रकी धष्टता—इससे अधिक अविनय किसी मृग-शिशुने कभी नहीं किया। केवल शशक, गिलहरी जैसे कुछ पशु हैं जो यदा-कदा महर्षिकी गोदमें आ बैठते हैं।

शुक्लवीति इधर अधिक अन्तर्मुख रहने लगा है। महर्षिने ही आज्ञा दे दी है कि वह आश्रम-सेवामें योग देनेसे विरत रहे। उसे अपनी अन्तर्मुखताको महत्त्व देना चाहिए। आज वह गुरुदेवके चरणोंके समीप आ बैठा है नित्य-हवनके पश्चात्, किंतु इस समय तो उसकी दृष्टि हवन-कुण्डसे उठते धूम्रकी कुण्डलियोंपर स्थिर है।

'आहुतिरूप कर्मका वेग धूम्रकी कुण्डलियाँ उठाता है। ये धूम्र-कुण्डलियाँ कुछ आकृतियाँ बनाती हैं।' वह अपने-आप कुछ कह चला है। 'धूम्रकी आकृतियोंमें स्थिरता क्या? कर्मका वेग कितनी स्थिरता देगा? अमरत्व भी धूम्राकृति धूसर–मरण-परिवेष्टित ही है!'

× × ×

'देखने-सुनने, छूने-सूँघने और चखनेमें मेरी कोई रुचि नहीं है।' ऋषि-पुत्र शुक्लवीति विषयी नहीं थे। पामर तो उस युगमें मानव-कुलमें उत्पन्न ही नहीं होते थे। उन्हें दानव-राक्षसकुलमें ही उत्पन्न होना पड़ता था। उस दिन जब महर्षि जैमिनि यज्ञशालासे उठ गये, स्वयं देवराज

इन्द्र प्रकट हुए। उन महाध्वर्युके सम्मुख आनेमें शतक्रतुको भी लज्जाका बोध होता था। ध्यानस्थप्राय शुक्लवीतिसे देवराजने प्रस्ताव किया कि वे सशरीर कुछ दिन अमरावती-में रहें। प्रत्यक्ष स्वर्गका अनुभव करके तब कोई निर्णय करें; किंतु उन्हें उत्तर मिला—'स्वर्गमें क्या कोई और विशेषता उपलब्ध होगी ?'

देवराज जैसे प्रकट हुए थे, अदृश्य हो गये। स्वर्गमें भोगातिशय भले कल्पनातीत हो, है ऐन्द्रियक भोग ही। जिसे ऐन्द्रियक भोगमें कोई अभिरुचि ही न हो, उसे स्वर्ग ले जाकर अमरपुरको साधनाश्रम तो उन्हें बनाना नहीं था।

'तुम्हें महर्षि पतञ्जलिका आश्रय लेना चाहिए।' कर्ममीमांसाके प्रणेता महर्षि जैमिनिने कुछ सोचकर ही शिष्यको अपने गुरु भगवान् व्यासके यहाँ नहीं भेजा होगा। सम्भवत: वे उसके लिए योगकी साधना पहले आवश्यक मानते होंगे।

'तुम्हें योग ही तो करना है !' गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार करके शुक्लवीतिने हिमालयकी ओर प्रस्थान किया था। मार्गमें उसे मिल गये लक्षयोगके आचार्य महाकात्यायन। उन्होंने प्रेरणा दी—'थोड़े समय यहाँ निवास करो। सामान्य श्रमसे भी समाधि सिद्ध हो सकती है। अष्टाङ्गयोगकी श्रम-साध्य साधना आवश्वक नहीं है।'

शुक्लवीतिको वैसे भी चातुर्मास्य करना था। यात्रा अवरुद्ध ही होती है तो इस अवरोधका उपयोग क्यों न

कर लिया जाय। हिमालयका शैवालिक अञ्चल वह अपनी सौम्य सुरम्यतामें अद्वितीय था। उसे यहाँ उटजके स्थानपर पर्वतीय गुहा मिल गयी आवासके लिए।

'नाद—स्वर ही तो है वह।' शक्लवीतिको अनहद-नादमें भी कोई महत्त्व नहीं जान पड़ा। उसे कहाँ सहस्रारका वैभव या 'धुरधाम' का चमत्कार चकित कर सकता था। वह कह रहा था—'नाद अन्तरमें श्रवण गोचर हो या बाह्य जगत्में, इन्द्रियका ही विषय है। वीणा, वंशी, शंख या मेघगर्जन—श्रोत्रेन्द्रिय-प्रत्यक्ष ही होता है। वह इन्द्रियगोलकके माध्यमसे हो अथवा गोलकके माध्यमके बिना हो। वह विषय है, अतः कर्म-साध्य है और कर्मसाध्य है तो नश्वर है। कर्मका नाम कोई साधन दे ले, क्या अन्तर पड़ता है। कर्म-साध्य तथ्य अविनाशी हो नहीं सकता।'

आचार्य महाकात्यायन आरम्भमें बहुत उत्साहित हुए। शुक्लवीति उत्थित-जाग्रत् कुण्डलिनी-साधक मिला था उन्हें। मणिपूर-अनाहत चक्रोंका वेध प्रारम्भमें ही हो गया। मेरुदण्डमें महास्फोट नाद, कम्प एवं गतिका अनुभव सहज बात थी। आज्ञा-चक्र अर्थात् त्रिपुटीका भंग, विन्दुवेध बङ्कनाल, भ्रमरगुहा आदिका अतिक्रमण करके कुण्डलिनीने सहस्रारके महाह्लदमें स्नान किया और अमृत-निर्झरसे उठकर वह दिव्यालोक पीठपर आसीन हो गयी। नित्य धामकी प्राप्ति—उस दिन आचार्यने सोल्लास कहा' और तभी शुक्लवीतिने उन्हें निराश कर दिया।

'नित्यधाम कैसे हो सकता है वह ?' उस प्रबुद्धप्रज्ञको कोई कल्पित मानसिक अवस्था संतुष्ट करके अपनेमें उलझानेमें असमर्थ थी। 'किसी नादके अश्रवण, किसी रूपके अदर्शनके कारण जीव बन्धनमें नहीं पड़ा है। जीवका बन्धन, उसके सुख-दुःखका कारण हैं राग-द्वेष एवं देहासक्ति। इनकी निवृत्ति हुए बिना जन्म-मरणसे जीव छूट गया—किसी भी मानसिक अनुभवको लेकर ऐसा मान लेना तो प्रत्यवाय होगा। यह तो स्वयंको धोखा देना है।'

खेचरी—जो अनहद-श्रवणसे भी संतुष्ट नहीं हुआ, उसे अस्पर्शयोग, गन्धयोग, ज्योतिर्दर्शन अथवा शाम्भवी मुद्राकी सिद्धिसे अमृतास्वादनमें संतुष्टि प्राप्त हो जायगी, इसकी आशा आचार्य महाकात्यायन नहीं कर सकते थे। उन्होंने चातुर्मास्यके अन्तमें उसे सस्नेह विदा किया।

यम और नियम ऋषि-कुमारके लिए स्वभावसिद्ध आचरण होते हैं। जो आहवनीय अग्निके समीप बैठकर अहर्निश अग्नि-सेवा कर चुका हो, आसन-सिद्धिकी बात उससे कोई क्या करेगा! धारणा और ध्यानका आलम्बन भले परिवर्तित किया जाय, अनहदोत्थान पर्यन्त ध्यान-सिद्ध तो वह था ही।

देवराज इन्द्र जिसे सशरीर स्वर्ग ले जाने पधार चुके हों, उस तपस्वी कुमारको न हिमालयका शीत बाधा देता था और न किन्नर-प्रदेशका संगीत-सौन्दर्य आकृष्ट करनेमें समर्थ था। हरित उपत्यकाएँ और शुभ्र हिमशृंग

केवल अन्तर्मुख होनेकी सात्त्विक प्रेरणामात्र देते थे उसे। जनपदमें जानेसे सहज अरुचि थी और उस युगमें तपस्वीका आतिथ्य करके तो अधिदेवता भी अपनेको कृतकृत्य मानते थे। दिनचर्याकी पूर्तिके लिए कन्द, फलकी प्राप्ति जैसे कठिन नहीं हुई, शुद्ध समिधाएँ भी उपलब्ध होती रहीं।

शुक्लवीतिको हिमालयके कुल-क्षेत्रसे भी ऊपर (व्यास नदीके उद्गमसे आगे) श्रीशुकदेवजीके स्थानपर पहुँचकर कहीं महर्षि पतञ्जलिके वर्तमान स्थलका पता लगा। आहवनीय अग्नि लिये ही वे उन परमयोगाचार्यकी मानव-अगम्य गुहा-द्वारपर उपस्थित हुए थे।

'सिद्धकामो भव!' अधिकारीकी उपस्थिति सर्वज्ञ गुरुको अज्ञात नहीं थी। समाधिसे उसी समय महर्षि उठे थे। अपने पदोंमें प्रणिपात करते शुक्लवीतिको उन्होंने उठा लिया। उसी दिन एक गुहा इस नवीन योगीकी साधनस्थली बन गयी।

× × ×

'भगवन्! समाधि कालावच्छिन्न अवस्था नहीं है क्या?' अनेक मासके अनन्तर शुक्लवीति अपनी गुहासे महर्षिके श्रीचरणोंमें प्रणाम करने आये थे। उनका मुख तेजोद्दीप्त हो रहा था। सुदीर्घ लोचनोंमें अबतक ध्यानस्थ होनेकी अरुणिमा थी। अभिवादन के पश्चात् उन्होंने अञ्जलि बाँधकर प्रश्न किया—'यह भी प्रयत्नसाध्य

स्थिति है। प्रयत्न कितना भी विशुद्ध, निर्बीज हो चुका हो, कर्म ही है।'

'कर्मसाध्य स्थिति अविनश्वर नहीं होती। महर्षिने स्वयं वह बात कही जो शुक्लवीति कहना चाहते थे। 'इसीसे समाधिसे व्युत्थान होता है।'

'जीव अविनाशी है। शाश्वत है। निरपवाद अमर है। काल उसे परिच्छिन्न नहीं करता।' शुक्लवीतिने जिज्ञासा की। 'तब जीवको अपने सहज स्वरूपकी नित्य प्राप्ति क्यों सम्भव नहीं है? क्यों उसके समस्त प्रयत्न कालपरिच्छिन्न—मृत्युके ग्रास होकर रह जाते हैं!'

सविकल्प-निर्विकल्प, सबीज-निर्बीज समाधियोंकी अवस्थाओंको पार करता जो परम सिद्ध योगी हो चुका है, उसका यह प्रश्न सामान्य व्यक्तिकी समझमें न आवे, यह स्वाभाविक है। महर्षि पतञ्जलिने भी दो क्षण नेत्र बंद कर लिये। उन्होंने गम्भीर स्वरमें कहा—'प्रत्येक साधन अधिकारीविशेषके लिए होता है। महर्षि जैमिनिकी सेवाने—धर्माचरणने तुम्हारे अन्तःकरणको शुद्ध कर दिया और यहाँ आकर तुम चित्तके विक्षेपसे मुक्त हो गये। व्यक्तित्वकी परिशुद्धिकी यह सीमा है। प्रकृति और प्राकृत प्रपञ्चसे पृथक्, कालसे अपरिच्छिन्न चेतन सत्ता—जीवनका अनुभव और उस अपने द्रष्टा स्वरूपमें अवस्थिति तुम प्राप्त कर चुके।'

'यह अवस्थिति बनी नहीं रहती प्रभु!' शुक्लवीतिके स्वरमें वेदना थी। 'जीवनका क्या यही परम प्राप्य है?'

'कर्मसे प्राप्त होनेवाली कोई स्थिति, कोई भोग, कोई अवस्था अविनाशी नहीं है। महर्षिने शान्त स्वरमें समझाया। 'जो अविनाशी है, उसका प्राप्य विनाशी नहीं हो सकता। अतः जीवनका परम प्रयोजन किसी भी कर्मप्राप्य भोग अथवा स्थितिकी उपलब्धि नहीं है।'

'तब ?' शुक्वीतिने यह शब्द मुखमें नहीं कहे। उसके नेत्रोंमें ही यह प्रश्न साकार हुआ।

'वत्स ! प्रत्येककी अपनी सीमा है। शरीर और अन्तःकरण असीम शक्ति एवं संस्कारमुक्त नहीं हुआ करते।' महर्षिने सस्नेह समझाया उसे। 'तुम्हें भगवान् श्रीकृष्ण-द्वैपायनके श्रीचरणोंका आश्रय लेना चाहिए। वे यहाँसे दूर नहीं हैं।'

× × ×

आपने यदि हिमालयका मानचित्र देखा हो—प्रसिद्ध तीर्थस्थलोंमें वास्तविक दूरी अधिक नहीं है। उत्तुंग हिम-शिखरोंके कारण साधारण यात्रीको बहुत घूमकर यात्रा करनी पड़ती है; किंतु योगसिद्ध पुरुषोंके लिए तो ये शृंग-शिखर बाधक नहीं बना करते। कुलक्षेत्रमें इलावर्त-को दाहिने छोड़ते, यमुनोद्गमकी प्रदक्षिणा करके, उसी दिन शुक्लवीतिने भगवती भागीरथीके उद्गममें स्नान किया। दूसरे दिन दिव्य कैलाशको दक्षिण करते वे अलकनन्दामें मिलनेवाली उदीची सरस्वतीके तटपर शम्याप्रासमें भगवान् व्यासके आश्रममें पहुँच गये थे।

'तुम कौन हो—यह जान लेना ही पर्याप्त नहीं है वत्स !' भगवान् व्यासने समझाया उस दिन। 'यह दृश्य जगत् क्या है ? यह जिसे तुम नश्वर, दु:खद कहते हो, यह कहाँसे आया ? तुम स्वयं इस जगत्‌में क्यों आये ? यह जिज्ञासाकी पूर्तिमें ही तुम्हारे जीवनका प्रयोजन पूर्ण होता है।'

'यह नाशवान् जगत् !' चौंका शुक्लवीति। इसके सम्बन्धमें उसे अबतक जिज्ञासा क्यों नहीं हुई ? वह क्यों अपने आपमें इतना लीन रहा कि इस दृश्यपर ध्यान ही नहीं दे सका।

'प्रश्न नहीं ; क्योंकि शब्दकी गति वहाँ नहीं है।' भगवान् व्यासने उसे बोलने नहीं दिया। 'तुम विशुद्धचित्त हो। मल-विक्षेप-विनष्ट हो चुके हैं। तुम जानते हो कि ज्ञान प्रकाशस्वरूप और नित्य है। जिज्ञासाका जो प्राप्य है, वह शाश्वत है। जीवनका परम प्रयोजन इसीलिए जिज्ञासा है। तुम जिज्ञासा करो—मनन करो ! जिसे तुम्हें जानना है, श्रुति कहती है—'तत्त्वमसि।'

मित्रता

'केवल एक प्रार्थना आप स्वीकार करें !' युवकने कप्तानसे लगभग गिड़गिड़ाकर कहा—'मैं जहाजपर रहूंगा। शर्माको आप नौकापर ले लें।'

'कप्तान ?' शर्माने बड़े दृढ़ स्वरमें कहा—'चिट्ठियोंने जो निर्णय किया है, उसे बदलनेका अधिकार आपको भी नहीं है। शीघ्रता कीजिये। देर करनेसे नौका भी जहाजके साथ जायगी।'

जहाजका पेंदा फट चुका था। बड़ा भयंकर तूफान आया था समुद्रमें। जहाजको नियन्त्रणमें रख पाना अशक्य हो गया और निश्चित मार्गसे भटकनेका फल जो हो सकता था हुआ। किसी समुद्रमें डूबे पर्वतसे (मूंगेका पर्वत भी हो सकता है) जहाज टकरा गया। पेंदेके मार्ग-से समुद्रका पानी शीघ्रतासे भरता जा रहा था। बचनेकी कोई आशा नहीं थी।

बेतारके यन्त्रने समाचार भेज दिये चारों ओर; किंतु इतनी शीघ्र सहायता पहुँच सके, यह तो अशक्य है। कोई भी अच्छा बंदरगाह पास नहीं। रक्षा-नौकाएँ उतारी गयीं। वृद्ध, बालक एवं महिलाएँ उनपर बैठा दी

गयीं। अन्तमें केवल एक नौका रही। उसपर केवल पंद्रह व्यक्ति बैठ सकते थे। 'कौन बैठें ? किसे मरनेको छोड़ दिया जाय ?' कप्तानने चिट्ठियाँ डलवायीं और जो पंद्रह नाम पहले निकले, उन्हें नौकामें बैठाना निश्चित हो गया।

बड़े विचित्र होते हैं ये भारतीय। एक ओर प्राणोंके लाले पड़े हैं और यह शंकरदत्तजी हैं कि अड़े हैं—'मैं नौकापर नहीं जाऊँगा। मेरे स्थानपर नन्दलाल शर्मा जायेंगे।'

'शंकर ! बचपन मत करो। चिट्ठी तुम्हारे नाम निकली है।' नन्दलाल कोई बात सुनना नहीं चाहते। 'जाकर नौकापर बैठो।'

'कोई चलो, पर चलो !' कप्तानको इससे मतलब नहीं कि कौन चलेगा। उसे शीघ्रता है—'मैं और प्रतीक्षा नहीं कर सकता।'

'आप नौका खोल दें ?' शंकरदत्तने दृढ़ स्वरमें कहा—'हम दोनों साथ मरेंगे।'

'मि० शर्मा ! आप भी पधारें।' कप्तान इस मित्रता-से इतना प्रभावित हुआ कि उसने नौकामें एक व्यक्तिका अधिक भार होनेपर कोई भय हो सकता है, इस बातकी उपेक्षा कर दी। 'हम सोलह व्यक्ति लेंगे नौकामें।'

लेकिन नौकामें बैठ जानेसे ही प्राणरक्षा हो जाय, ऐसी आशा किसीको नहीं थी। तूफान—वह तूफान जिसमें जहाज पथ-भ्रष्ट होकर फट गया था, शान्त

नहीं हुआ था। उस तूफानमें रक्षा-नौकाओंकी रक्षाका ही कितना भरोसा ?

जिसकी आशङ्का थी, वही हुआ। रक्षा-नौका लहरोंके प्रवाहमें बह चली—बहती गयी और लहरके थपेड़ेसे, शार्क या अन्य किसी जलजंतुके आघातसे—पता नहीं कैसे सहसा टुकड़े-टुकड़े हो गयी। अभागे यात्री—सागरकी उत्ताल तरंगें और ऊपर खुला आकाश—कोई उनका क्रन्दन सुननेवाला भी वहाँ नहीं था।

समाचारपत्रोंमें दूसरे दिन उस जहाजके डूबनेका समाचार छपा। एक भारतीय जहाज उस समय समुद्रमें कहीं पास ही था। उसने बेतारके यन्त्रपर सहायताकी पुकार सुनकर दौड़ लगायी। समाचारपत्र तथा देशके शासकों एवं संस्थाओंने भारतीय जहाजके कर्मचारियोंके साहसको धन्यवाद दिया था। भयंकर तूफानके चलते उस भारतीय जहाजने डूबते जहाज तथा रक्षा-नौकाओंपर बैठे प्रायः सभी यात्रियोंको बचा लिया था। केवल एक रक्षा-नौका नहीं मिल सकी। उसके कुछ यात्री, जिनमें डूबनेवाले जहाजका कप्तान भी था, समुद्रमें टूटे तख्तोंके सहारे तैरते हुए उठाये गये थे। एक जहाज दुर्घटनामें डूब जाय और पाँच-सात प्राण-हानि हो ; यह कोई गिनने-जैसी हानि नहीं थी।

× × ×

[२]

'हम कहाँ हैं !' खुरदरी काली चट्टानपर कोई उसका सिर गोदमें लिये बैठा था। प्रचण्ड धूपने पत्थरको

गरम कर दिया था। कितनी देर मूर्च्छित रहा वह, पता नहीं। नेत्र खोलनेपर एक बार उसने इधर-उधर देखना चाहा। समुद्रके किनारे ही पड़ा था वह और उसका मस्तक अपने मित्रकी गोदमें था।

'तुम उठ सकते हो?' नन्दलालने सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—'तनिक प्रयत्न करो। थोड़ी दूर खिसकनेसे हम छायामें पहुँच जायँगे।

उठनेकी उसने चेष्टा की और वह ओ ओ करके वमन करने लगा। समुद्रका जो पानी पेटमें चला गया था, उसका निकल जाना अच्छा ही हुआ। नौका डूबनेपर दोनों भाग्यसे एक ही तख्तेको पकड़ सके थे। उसके बाद क्या हुआ, यह किसीको पता नहीं। लहरोंके थपेड़ोंने श्वास लेना असम्भवप्राय कर दिया। मूर्च्छा आ गयी उन्हें।

नन्दलाल शर्मा कुछ पहले जागे। मूर्च्छासे ही नहीं, महामृत्युसे जगने-जैसा लगा उन्हें। लहरोंने किनारे चट्टानपर पटक दिया था। अङ्ग-अङ्ग जैसे टूट गया था। शरीरके कितने स्थान फटकर घाव बन गये हैं, यह जानने-समझनेकी शक्ति नहीं थी। मस्तक दर्दसे फटा जा रहा था और पेटमें जैसे ज्वालामुखी जाग गया हो। मिचली आयी और सबसे पहले मुखमें अँगुली डालकर वमनकी क्रियाको उन्होंने सहायता दी।

'शंकर कहाँ है?' पेटमें गया समुद्रका जल निकलते ही पीड़ा इतनी कम हुई कि मस्तक हिलाकर इधर-उधर

देखा जा सके। उनका मित्र उनसे तीन-चार हाथपर चित पड़ा था। उसके शरीरके घावोंसे निकलकर रक्त उस काली शिलापर जहाँ-तहाँ जम गया था।

समुद्रका ज्वार उतर गया था। तूफान प्रायः शान्त हो गया था। नन्दलाल शर्माको अपनी पीड़ा भूल गयी, वे पेटके बल धीरे-धीरे खिसकने लगे। वह चार हाथकी दूरी चार योजन-जैसी बन गयी थी। शरीर तवेकी भाँति ज्वरसे जल रहा था और ऊपर धूपमें असह्य तेजी थी। किसी प्रकार खिसकते हुए वे मित्रके पास पहुँचे। शरीर छूते ही यह आश्वासन मिल गया—जीवन है।

'हम कहाँ हैं ?' शंकरदत्तने उठनेका प्रयत्न किया और फिर लुढ़क गया। दोनोंकी दशा लगभग एक-जैसी थी।

'कहाँ हैं, यह कौन जाने ; किंतु यहाँसे कुछ गजपर वृक्ष है। तुम साहस करो!' नन्दलालजी समझते थे कि चाहे जो हो, वृक्षोंतक खिसक ही चलना चाहिए। यहाँ पड़े रहनेसे तो मृत्यु निश्चित है। पीने-योग्य पानी कहीं आस-पास है या नहीं, पता नहीं और यहाँ धूप तथा ज्वरके कारण कण्ठ सूख रहा है।

'पानी ?' शंकरदत्तने माँग नहीं की। उसने केवल जानना चाहा कि आस-पास कहीं जल है या नहीं ?

'तुम छायातक खिसक चलो तो मैं जलकी खोज करनेका प्रयत्न करूँ।' नन्दलाल शर्माने उठनेमें सहायता दी। वैसे स्वयं उनके लिए उठना और खिसकना

अत्यन्त कष्टदायक हो रहा था ; किंतु वे नहीं चाहते थे कि शंकरदत्तको यह अनुभव हो कि उन्हें भी कुछ पीड़ा है।

'तुम्हें कहाँ चोट लगी है ! बड़ा तीव्र ज्वर है तुम्हें।' शंकरदत्तने अब नन्दलालका हाथ पकड़ा और उनकी ओर देखना प्रारम्भ किया। उठनेका प्रयत्न करनेके बदले वह उनके मुखकी ओर एकटक देखने लगा। उसके नेत्रोंसे धारा चलने लगी।

'मुझे कुछ नहीं हुआ।' नन्दलालजीने उसके नेत्र पोंछ दिये। 'तुम रोओ मत ! जो आपत्ति आ पड़ी है, उसे साहस तथा धैर्यसे ही टाला जा सकता है। उठो तो सही !'

दोनों ही इस योग्य नहीं थे कि उठकर खड़े हो जाते। बैठकर एक दूसरेके सहारे खिसकते, रुकते किसी प्रकार वृक्षकी छायामें पहुँचना था उन्हें।

× × ×

[३]

'भगवान् ही सबके रक्षक हैं। वे दयामय हमारी भी रक्षा करेंगे !' वृक्षकी छायामें पहुँचकर दोनों प्रायः लुढ़क गये। नेत्र खुलते नहीं थे। नन्दलाल शर्मा नेत्र बंद किये-किये ही मित्रको आश्वासन दे रहे थे।

'हे बजरंगबली !' शंकरदत्त श्रीहनुमान्‌जीके उपासक हैं। वे अपने आराध्यका इस संकटमें न स्मरण करें तो कब स्मरण करेंगे।

सहसा एक धमाका हुआ। दोनों चौंककर बैठ गये। दोनोंके मध्य वृक्षके ऊपरसे एक बंदर गिर पड़ा था। वह कूदा नहीं था, गिर ही पड़ा था और थर-थर काँप रहा था। अपने सब अङ्ग उसने समेट लिये थे और सिर दोनों घुटनोंमें दबा रक्खा था।

'शेर आ रहा है।' सोचने-समझनेका समय नहीं था। पचास गजसे भी कम दूरी रह गयी थी। वृक्षोंके बीचसे निकलकर वनराज चड़मड़ करता बड़ी धीर गतिसे बढ़ा आ रहा था। बंदर शेरके भयसे ही काँप रहा था और शेरके भयसे ही वृक्षसे लुढ़क भी पड़ा था वह।

'शरणागत है यह।' शंकरदत्तको निश्चय करनेमें दो क्षण भी नहीं लगे। वह बंदरको अपने पेटके नीचे दबाकर उसके ऊपर झुक गया।

'मरना ही है तो हम तीनों साथ मरेंगे।' नन्दलाल शर्मा अपने मित्रको नीचे करके उसके ऊपर झुक रहे।

'क्या करते हैं आप?' लेकिन शंकरदत्तको न हिलनेका समय मिला न बोलनेका। एक हाथसे नन्दलालजीने उसका मुख बंद कर दिया। शेर पास आ गया था।

शेर सचमुच वनका राजा है। काली धारियोंसे सजा उसका पीला वर्ण, उसकी गम्भीर चाल और सबसे बढ़कर उसका गौरवपूर्ण स्वभाव। वह न गीदड़-जैसा ओछा है, न चीते-जैसा धूर्त। उस वनराजके सम्बन्धमें

कोई नहीं कह सकता कि कब वह क्रोध करेगा, कब कृपा करेगा और कब क्षमा कर देगा।

शेर पास आया। दो क्षण रुका रहा। कुतूहलसे देखता रहा टीलेके समान एक दूसरेपर पड़े तीनों प्राणियों-को। उसने कदाचित् सोचा होगा—'यह कौन-सा पशु है ? अपने वनमें ऐसा गोलमटोल पशु तो मैंने देखा नहीं। कैसी गन्ध आती है इससे ? बंदरकी और बंदरसे विचित्र भी। मैं मारूँगा इसे ? वनका राजा मैं इस बिना पैरके कछुएके समान पड़े रहनेवाले पशुको मारूँ। क्या हुआ जो यह खूब बड़ा कछुआ है।' कोई प्राणी अपरिचित आहार सहसा मुखमें नहीं डालता। शेर किसी विवशतासे मनुष्य-भक्षी न बन जाय, तबतक मनुष्यपर चोट नहीं करता और उस वनमें कभी मनुष्य आया होगा—संदेह ही है।

शेर जैसे आया था, वैसे ही दूसरी ओर चला जा रहा था। जब वह ओझल हो गया, नन्दलाल शर्मा उठकर बैठ गये। शंकरदत्तने भी बंदरके ऊपरसे अपनेको अलग किया। बंदर कई क्षण वैसे ही सिकुड़ा बैठा रहा। इसके बाद जब उसने नेत्र खोले—पहले दो पैरोंपर खड़े होकर इधर-उधर देखना प्रारम्भ किया और फिर उन दोनों मनुष्योंको देखता और कई प्रकारके संकेत करता रहा। सम्भवतः वह कृतज्ञता प्रकट कर रहा था। सहसा वहाँसे वह एक ओर भागने लगा और वृक्षोंकी डालियोंपर कूदता वनमें चला गया।

'पास ही कहीं जल होना चाहिये।' नन्दलाल शर्मा ठीक कह रहे थे। 'शेर पानी पीने गया हो सकता है या फिर पानी पीकर लौटा होगा।'

'समुद्रके किनारे कहीं मीठा पानी होगा, यह तो कठिन ही है।' शंकरदत्तने इधर-उधर देखना प्रारम्भ किया। छायाकी शीतलताने बहुत कुछ कष्ट कम कर दिया था। अकस्मात् जो भय आया था, उसकी शरीरपर अनुकूल प्रतिक्रिया हुई थी। बहुत पसीना आया और ज्वर उतर गया।

'महावीरजी ही हमारी रक्षा करने आये थे?' शंकरदत्तने फिर गद्‌गद कण्ठसे कहा।

'लगता है, हमारे लिए उन्होंने एक नवीन मित्र भेज दिया है।' नन्दलालजीने देख लिया था कि वह बंदर लौट रहा है। वृक्षोंपरसे चढ़ना-उतरना बड़ा कठिन हो रहा है उसके लिए। किसी प्रकार दो बड़े-बड़े कच्चे नारियल मुख और एक हाथके सहारे पकड़े चला आ रहा है उन्हींकी ओर।

× × ×

[४]

'शंकर! तुम भारतीय हो और एक भारतीयके लिए क्या यह उचित आचार है?' कई दिनों देखते रहनेके बाद नन्दलालजीने अपने मित्रको समझानेका निश्चय किया। आज वे उसे एकान्तमें ले आये हैं इसीलिए।

'मैं मनुष्य हूँ शर्मा ! मनुष्यके संयमकी एक सीमा है।' शंकरदत्तने मस्तक झुका रक्खा था।

'तुम भारत लौटनेको उत्सुक नहीं हो ? या तुम उसे भारत ले जानेको प्रस्तुत हो ?' नन्दलालने सीधा प्रश्न किया।

'मेरी स्त्री, मेरे बच्चे और मेरा हृदय भारतमें ही है।' जन्मभूमिके स्मरणसे ही शंकरदत्तके नेत्र भर आये। 'हम वहाँ इस जीवनमें पहुँच सकेंगे या नहीं, कौन जानता है।'

'तुम उसे साथ ले चलनेका साहस करोगे यदि चलनेका अवसर आवे ?' नन्दलालजीने फिर पूछा।

'उसे ले चलना छिः !' शंकरदत्तने मुख बनाया। 'यह कैसी बात सोचते हो तुम ? यह कैसे सम्भव है ? आवश्यकता भी क्या है इसकी ?'

'कोई आवश्यकता नहीं है ?' बड़ा तीक्ष्ण व्यंग था। 'वह एक वन्य कन्या है। कुरूपा है। असभ्य जातिकी है। तुम्हें इसीसे यह अधिकार है कि उसको चाहे जैसे ठगो !'

'इसमें ठगनेकी क्या बात है ?' शंकरदत्तने सिर उठाया—'उसकी जातिमें कुछ पातिव्रत नहीं चलता। उसे कोई असुविधा नहीं होती है।'

'तुमने बता दिया है ?' स्वर कठोर हो गया—'न बताया हो तो मैं उसके पिताको बता दूं कि तुम विवाहित हो और भारत लौटनेको उत्सुक भी।'

'वह सुनते पागल हो जायगा !' शंकरदत्त चौंक पड़ा। उसके मित्रके मनमें यह बात आयी कैसे? 'तुम चाहते हो कि वह क्रूर जंगली मेरी बोटियाँ कुत्तोंको खिला दे?'

'यह कुछ बुरा नहीं होगा।' नन्दलालजीपर कोई प्रभाव न पड़ा। 'एक भारतीयका इतना पतन हो जाय कि वह झूठ बोलने लगे, भोले वन्य लोगोंको धोखा देकर उनकी कुमारियोंसे अपनी कुत्सित वासना पूरी करना चाहे, इससे अच्छा है कि वह मार डाला जाय।'

दोनों ही भाग्यसे जहाँ पहुँच गये थे, वह कोई वन्य भूमि थी। ऊँचे वृक्ष, घनी लताएँ और सभी प्रकारके वन-पशु। यह तो उन्हें बहुत पीछे पता लगा कि वे अफ्रिका महाद्वीपपर हैं। भूलते-भटकते एक गाँवमें पहुँच गये थे वे। चारों ओर ऊँची लकड़ियोंका सुदृढ़ घेरा बनाकर बीचमें जंगल काटकर स्वच्छ भूमि निकाल ली है यहाँके लोगोंने। कुछ झोपड़ियाँ हैं उस भूमिके मध्य। केले लगे हैं आस-पास और कुछ खेत भी हैं। सामान्य जंगली जातियाँ आखेटजीवी होती हैं और यह गाँव इसमें अपवाद नहीं है। केवल इतनी बात है कि अफ्रिकाके घोर वनोंमें रहनेवाली जातियोंके समान यहाँके लोग नरभक्षी या मानव-शत्रु नहीं हैं।

समुद्रका तट दूर-दूरतक जहाजोंके ठहरनेके योग्य नहीं। कहनेको यह गाँव ब्रिटिश-उपनिवेशका भाग हैं; किंतु इतनो दूर है उपनिवेशको मुख्य बस्तियोंसे कि

गाँवके बड़े-बूढ़ोंको ही स्मरण है कि गाँवमें एक बार तीन शिकारी साहब कुछ हब्शी मजदूरोंके साथ आये थे। जब नन्दलाल शर्मा और शंकरदत्तजी ग्राममें पहुँचे उनका स्वागत-सत्कार हुआ। ग्रामके लोगोंने समझा—'ये दोनों साहब ही हैं।' कपड़े पहननेवाला उनके लिए साहब होगा या साहबका कृपापात्र। वे तो कमरमें छालकी लँगोटी लगाते हैं। स्त्रियाँ खजूरके पत्तोंका बना घाघरा पहनती हैं।

कोलतार-जैसा काला शरीर, मोटे-मोटे ओठ, पीले-गदे दाँत—उनकी भाषाका एक शब्द शंकरदत्त नहीं जानता था। पण्डित नन्दलालजी शर्मा विद्या-व्यसनी हैं। यात्रासे पहले ही उन्होंने मूक-संवाद (केवल ओठ हिलाकर बातचीत) बड़े परिश्रमसे सीखी। प्रायः सभी जंगली जातियाँ बातचीतकी यह पद्धति जानती हैं। अफ्रिकामें यह नित्यकी बात है कि दो ऐसी जातिके हब्शी परस्पर मिलें जो एक-दूसरेकी भाषा नहीं जानते। मूक-सवादकी पद्धतिको उस महाद्वीपकी सार्वभौम भाषा माननी चाहिए। इस भाषाके कारण ग्रामके निवासियोंसे परिचय कर लेनेमें नन्दलालजीको कठिनाई नहीं पड़ी। शंकरदत्तने भी अपने मित्रसे यह भाषा कुछ गिने दिनोंमें ही सीख ली।

अर्धनग्न लड़कियाँ और युवतियाँ—भले वे अत्यन्त कुरूप सही, किंतु मनुष्यके भीतर जब वासना जगती है……। शंकरदत्तको उनके मध्यमें ही रात-दिन रहना था। पता नहीं क्यों, उनमें-से कई इस गोरे दीखने-

वाले युवकसे बहुत आकर्षित हो गयी थीं। शंकरदत्तने भी एकसे अधिक घनिष्ठता बढ़ा ली और बात इस सीमातक पहुँच गयी कि उसके सावधान मित्रको उसे अकेले ले जाकर समझाना आवश्यक जान पड़ा।

'तुम मित्र हो?' दो क्षण तो शंकरदत्त स्तब्ध खड़ा रहा।

'तुम श्रीहनुमान्‌जीके उपासक हो?' नन्दलालजीने उत्तर दिये बिना कहा—'तुम्हें लज्जा नहीं आती?'

'मैं क्या करूँ? तुम मुझे क्षमा कर दो।' स्वरमें बहुत थोड़ी ग्लानि थी।

'देखो शंकर! मैं परिहास नहीं कर रहा हूँ। तुम जानते हो कि मैं झूठ नहीं बोला करता।' नन्दलालजीका स्वर बड़ा गम्भीर बन गया—'तुम यह भी जानते हो कि तुमपर थोड़ी भी विपत्ति हो तो मुझे उसे मिटानेके लिए मर-मिटनेमें भी प्रसन्नता होगी। लेकिन मेरा मित्र कदाचारी हो जाय, धूर्त एवं कपटी बने और मरनेके बाद जन्म-जन्मतक नरकोंमें सड़े, इसकी अपेक्षा मैं पसंद करूँगा कि वह मार डाला जाय। उसके देहका मोह मुझे रोक नहीं सकेगा।'

× × ×

'शर्मा मेरे सच्चे मित्र हैं। सच्चा प्रेम करना आता है उन्हें।' शंकरदत्त अब गद्‌गद कण्ठसे अपने मित्रका गुणगान करता है—'वे न होते तो मैं डूब चुका था—

महासागरसे कहीं भयंकर पापके अगाध दलदलमें डूब ही गया था मैं।'

समुद्रके किनारे सूखी लकड़ियोंके ढेर करना और उनमें अग्नि लगा देना—शर्माजीने यह नियम बना रक्खा था। उनका परिश्रम सफल हुआ। उधरसे निकलनेवाले एक जहाजने धुआँ देख लिया। कुतूहलवश ही किनारे आया था वह जहाज; किंतु उसके कप्तानको भी कम प्रसन्नता नहीं हुई दो भारतीय नागरिकोंका इस प्रकार उद्धार करनेमें।

नन्दलाल शर्मा और शंकरदत्त—अब ये दो मित्र ही नहीं हैं। उनका मित्रमण्डल तीनका हो गया है। उसमें एक बंदर भी है जो अफ्रिकासे उनके साथ ही आया है और अब नन्दलालजीके बगीचेमें ऊधम करनेकी पूरी स्वतन्त्रता पा गया है।

सदाचार

'आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।'

'देव! वत्सराज्यकी प्रजा चिन्तित है। स्वयं मुझे भी आश्रयकी अपेक्षा है।' नरेशने राज्यगुरु अनन्तशंकर आचार्यके चरणोंमें प्रणाम करके प्रार्थना की—'आपकी असीम कृपा एवं अकल्पनीय प्रतिभाने राज्यको अबतक निश्चिन्त रक्खा।'

'कोई अमर नहीं है' यह बात मैं समझता हूँ। स्वयं तुमसे इस सम्बन्धमें विचार करना था मुझे।' आचार्यने स्नेहपूर्वक कहा 'जराजीर्ण इस कलेवरको कालार्पण करनेका समय समीप आ गया है, यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। तुम इतना करो कि राजोद्यानमें देशके विद्वान् ब्राह्मणोंका सत्कार करनेकी घोषणा कर दो। आगे क्या करना है, मैं स्वयं देख लूंगा।'

'जैसी आज्ञा!' नरेशको आश्वासन प्राप्त हुआ। वे राजसदन लौट गये। उसी दिन चर भेज दिये गये देशके विभिन्न नगरोंमें वत्सनरेशकी 'विद्वत्-सत्कार-घोषणा' का प्रचार करनेके लिए।

वत्सराज्यके राज्यगुरु अनन्तशंकर आचार्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। अपने कुलमें वे अकेले ही बच रहे हैं। उद्भट विद्वान्, प्रोज्ज्वल प्रतिभाशाली, अतिशय नियम-निष्ठ तपस्वी तथा स्वभावसिद्ध भगवद्भक्त। ऐसा राज्यगुरु प्राप्त करके वत्सराज्य स्वयं समृद्ध ही नहीं हुआ, देशमें सम्मानित भी हुआ। दूरस्थ देशोंके नरेशोंका तथा ऋषिकल्प विद्वानोंका आतिथ्य-सौभाग्य प्राप्त होता रहा दीर्घकालतक; क्योंकि आचार्यके दर्शन तथा संसर्ग-लाभकी आकांक्षा प्रबल आकर्षण था सभीके लिए। लेकिन आचार्यकी शतवार्षिकी मनायी जा चुकी है। वे तपोधन दृढ़काय, सबल स्वस्थ हैं यह तो ठीक; किंतु ऐसे महापुरुष रोग-शय्यापर तो शरीर छोड़ा नहीं करते। भगवान् काल जब चाहेंगे, देहसे अनासक्त आचार्य सहज उसी प्रकार देहदान उन्हें कर देंगे, जैसे कण्ठकी पुष्पमालाका प्रसाद प्रसन्न भावसे नरेशको दे देते हैं। अब उनके उपरान्त वत्सराज्यका राज्य-गुरुपद किस महानुभावसे कृतार्थ हो, यह यदि आचार्य ही आदेश दे जायँ तो सबकी चिन्ता मिटे।

'विद्वत्सत्कार!' वत्सराज्यकी घोषणा कुतूहल एवं उत्साह दोनोंको देनेवाली थी। कोई यज्ञ, कोई सत्र, कोई तथ्य-निर्णायिका विद्वत्परिषद्—ऐसा कुछ नहीं। अबतक तो नरपतिगण ऐसे ही किसी अवसरपर देश-देशके विद्वानोंको आमन्त्रित किया करते थे। लेकिन वत्सनरेशकी घोषणामें ऐसा कुछ नहीं है।

'पूरा नवीन संवत्सर वत्सराज्य विद्वत्सत्कार वर्षके रूपमें मनायेगा। आप अपनी सुविधानुसार पधारें। जबतक आप रहना चाहेंगे, हम सेवा करके अपनेको कृतार्थ मानेंगे। हमारी देशके समस्त विद्वान्, तपस्वी, विप्रवर्गसे अत्यन्त विनम्र प्रार्थना है कि वे इस संवत्सरमें पधारकर कुछ काल हमें अपने सत्कारका सौभाग्य प्रदान करनेकी कृपा अवश्य करें।' घोषणा तो यही है। इसमें कहीं किसी प्रयोजनका संकेत नहीं। कोई एक निश्चित अवधिमें सब लोग जब एकत्र नहीं होते हैं तो यज्ञ, सत्र अथवा परिषद्के अकस्मात् आयोजनकी भी सम्भावना नहीं रह जाती।

'कैसा है यह विद्वत्सत्कारका समारम्भ?' यह प्रश्न सभी विद्वानोंके मनमें उठना था। प्रश्न उठा तो कुतूहल जागा और उस कुतूहलने प्रेरणा दी यात्रा करनेकी। वत्सनरेशने विद्वानोंकी यात्राके लिए यथासम्भव सब सुविधाएँ मार्गमें कर दी थीं। सभी आर्य नरेशोंसे उन्होंने प्रार्थना की थी विद्वानोंकी यात्रामें सुविधा देनेकी। यह प्रार्थना न भी की गयी होती—ऐसा भाग्यहीन हिंदू नरपति कौन होगा जो विद्वान् ब्राह्मणके राज्यमें आनेपर उसकी सेवाका सौभाग्य छोड़ दे।

'आचार्य अनन्तशंकर भगवती वीणापाणिके वरद पुत्र हैं।' अनेक स्थानोंपर विद्वानोंने वत्सराज्यकी इस आह्वान-घोषणापर विचार करनेके लिए स्थानीय गोष्ठियाँ संयोजित कर लीं। उन गोष्ठियोंमें प्रायः एक-जैसी बातें

कही गयीं—'वे क्या चाहते हैं, कल्पना कर लेना सरल नहीं है ; किंतु इस प्रकार उनके सत्संगका सुअवसर उपलब्ध हुआ, यह हम सबका सौभाग्य !'

'आचार्य वृद्ध हो गये हैं। उनके कुलमें और कोई तो है नहीं।' अनेक स्थानोंमें यह अनुमान भी किया गया—'उन्हें अपना उत्तराधिकारी भी तो राज्यको देना है। अब वे इस विषयपर विचार करनेकी अवस्था प्राप्त कर चुके हैं। तपस्वी, विद्वान् ब्राह्मणोंमें-से ही तो उन्हें अपना अधिकारी चुनना है।'

प्रायः विद्वन्मण्डली ही आयी वत्सराज्यमें। एक स्थानके विद्वानोंने एक साथ यात्रा करनेमें सुविधा देखी। मार्गमें पड़नेवाले स्थानोंके विद्वान् ब्राह्मण यदि पहले प्रस्थान नहीं कर गये थे तो वे साथ हो गये। वत्सराज्यमें एकाकी अतिथि कम ही पहुँचे थे।

आचार्यके आह्वानका प्रयोजन प्रायः लोगोंने अनुमान कर लिया था, इससे आगन्तुकोंकी संख्या बढ़ गयी थी ; किंतु इससे आचार्यने कोई असुविधा अनुभव नहीं की। वे तो केवल इससे बचना चाहते थे कि आशा देकर प्रतिस्पर्धाके भावसे आये ब्राह्मणोंको निराश लौटानेका निष्ठुर कार्य न करना पड़े।

× × ×

राज्योद्यान सत्कार-शिविर बन गया था। नगरके बाहर रम्य स्थलोंपर सुन्दर आवास बना दिये गये थे

तृण-पर्णादिसे । आगत-अतिथि उन आवासोंमें सम्पूर्ण सुविधा प्राप्त करके भी स्वच्छन्दतापूर्वक स्वरुचिके अनुसार व्यवहार करते रहें, ऐसा प्रबन्ध अत्यन्त सावधानीसे किया गया था। आचार्य स्वयं राज्योद्यानमें आ बसे थे और विद्वानोंको उनके समीप आनेमें कोई रुकावट नहीं थी। राज्योद्यानमें ही वस्त्र, धेनु, धन आदि देकर स्वदेश लौटनेके इच्छुक विद्वानोंका सत्कार करनेकी व्यवस्था थी।

वत्सराज्यकी राजधानी उत्सव-अनुष्ठानमयी हो उठी। अर्चा, तप, यज्ञ, कीर्तन, वेदपाठ, शास्त्र-चर्चा—विद्वान् ब्राह्मणोंके यहाँ तो यही होना था। जल, पुष्प, दर्भ, समित्, फल तथा यज्ञ एवं अर्चनकी सामग्रियाँ सबके लिए अत्यन्त सुलभ कर रक्खी थीं नरेशने। नागरिक जनोंको लगा, उनके समस्त पुण्य साक्षात् फलोन्मुख हो उठे हैं इस समय।

विद्वद्वर्ग आचार्यके समीप उपस्थित होता था। परस्पर भी उनकी गोष्ठियाँ होती थीं। इन दिनों केवल आचार्यके अपने अन्तेवासी ब्रह्मचारी परस्पर मिल नहीं पाते थे। आचार्यने उनमें-से प्रत्येकको आगतोंके सेवा-सत्कारमें नियुक्त कर दिया था और इस पुनीत पर्वपर इतना उत्तम कार्य प्राप्तकर वे भी उत्साहपूर्वक लगे थे।

बड़ा सात्त्विक समारोह! अत्यन्त सरल सत्संगका सुअवसर! वत्स-नरेशकी श्रद्धा धन्य है। श्लाघ्य है उनकी निष्काम श्रद्धा, विद्वानोंने आचार्यके आयोजनकी

भूरि-भूरि प्रशंसा कीं। जिनको जब जानेकी आवश्यकता प्रतीत हुई, समुचित सत्कार एवं दानसे सम्मानित करके लौटनेकी पूरी सुविधा नरेशने नम्रता तथा कृतज्ञता प्रकट करते हुए प्रदान की। किसीको संकेत भी नहीं प्राप्त हुआ कि इस आयोजनका कोई प्रयोजन भी था। अपने अनुमान विद्वानोंको अकारण प्रतीत हुए।

वेद, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड, न्याय, सांख्य, वेदान्त, व्याकरण, साहित्य आदिके प्रकाण्ड पण्डित पधारे थे। अद्भुत प्रतिभाशाली, अकल्पनीय अनुष्ठानधनी, स्वभावसिद्ध तापस तथा योगसिद्ध साधक भी आये थे। विद्वानोंकी मण्डलियाँ आती रहीं और विदा होती रहीं।

'देव!' नरेशको अपने आचार्यमें अगाध श्रद्धा थी। वे केवल आज्ञाका अनुगमन कर रहे थे—'अकथनीय पाण्डित्य पाया है इन्होंने।' नरेश किसीकी विद्यासे प्रभावित हुए आते तो प्रार्थना कर लेते थे।

'राजन्! किसने क्या पढ़ा है, क्या जानता है, इसका अधिक मूल्य नहीं है।' आचार्य तटस्थ स्वरमें कह देते – 'वह स्वयं क्या है, महत्त्वकी बात यह है।'

'लोकपूजित तपोधन पधारे आज!' नरेश समुत्सुक सूचना देते।

'काय-क्लेश केवल प्रकृतिके राज्यमें पुरस्कार पाता है।' आचार्य अद्भुत हैं। उनपर जैसे कोई सूचना प्रभाव ही नहीं डालती। वे व्याख्या करने लगते हैं—'जनार्दनकी संतुष्टि भिन्न वस्तु है और जो उसका सम्पादन न कर

सके, जनताके मार्ग-दर्शनका दायित्व उठा लेनेकी शक्ति उसमें नहीं हो सकती।'

'साधनाने जिन्हें सिद्धि-समुदायका स्वामी बना दिया है, ऐसे महापुरुषकी सेवाका सौभाग्य मिला मुझे आज।' नरपतिका हर्ष अनुचित नहीं था।

'सिद्धि साधनाकी सफलताका नहीं, उसके बाधित हो जानेकी परिचायिका है।' आचार्य उपदेश करने लग जाते हैं—'जननायकको उससे सावधान रहना चाहिए; क्योंकि वह सामान्य नियमोंका उल्लङ्घन करके भी न्यायालयकी परिधिमें नहीं आया करता। कायिक आसक्ति या यश-इच्छाने ही उसे सिद्धिके स्वीकार करनेको विवश किया है। कामना वहाँ निर्बीज नहीं हुई। अत्यन्त उर्बर खाद है सिद्धि इस बीजके लिए। अतः वह बीज कैसा कितना बड़ा वृक्ष बनेगा, कहा नहीं जा सकता। उससे असावधान रहोगे तो अपना अहित कर ले सकते हो श्रद्धाके आवेशमें।

× × ×

'देव! आज अन्तिम विद्वन्मण्डल भी विदा हो गया।' नरेशके स्वरमें अत्यन्त व्यथा थी। वर्ष समाप्त हो गया। आगत विद्वान् जा चुके। उनका सत्सङ्ग, उनकी सेवाका महत्पुण्य—यह सब तो ठीक, किंतु उनका इस आयोजनका उद्देश्य जब आज भी अपूर्ण है, अब वह कब कैसे पूर्ण होगा?'

'व्यथित होनेकी आवश्यकता नहीं है राजन् ! यह वसुन्धरा कभी वन्ध्या नहीं होती।' आचार्यने आश्वस्त करते हुए कहा–'अपने इस सम्पूर्ण देशका नाम सृष्टिकर्ता-ने अजनाभवर्ष अकारण नहीं रक्खा है। भारतवर्ष इसका नाम तो भगवान् ऋषभदेवके पुत्र भरतके नामपर बहुत पीछे पड़ा। व्यष्टिमें—अपने देहमें समस्त उद्भावनाओं-का केन्द्र है नाभिचक्र और समष्टिमें सृष्टिकर्ताके सर्वतो-मुखी ज्ञानका उद्भावक यह अजनाभवर्ष। लेकिन अन्वेषण अनिवार्य होता है अतिशय मूल्यवान् रत्नकी प्राप्तिके लिए। अधिकारीका अन्वेषण अपने स्थानपर बैठे-बैठे कर लेनेकी आशा करना मेरे लिए भी उचित नहीं था। यात्रा करूँगा मैं तुम्हारे साथ।'

बहुत कम लोगोंको साथ ले जाना था। अन्वेषण-यात्रा भी इसे कहना कठिन था। आचार्यने उस आदेश देनेवाली रात्रिको शयन नहीं किया था। वे पूरी रात्रि ध्यानस्थ रहे थे और प्रातः जब यात्राके लिए प्रस्तुत होकर नरेश पधारे, आचार्य नित्यकर्म सम्पूर्ण कर चुके थे। रथपर बैठते ही उन्होंने वत्सराज्यके ही एक सीमा-स्थित ग्राममें चलनेका आदेश दे दिया।

'मेरा अहोभाग्य !' एक साधारण झोपड़ीके सम्मुख जब ये रथ आकर खड़े हुए, ग्रामके प्रायः सब नर-नारी एकत्र हो गये। उस झोपड़ीका स्वामी तो हर्षसे उन्मत्तप्राय हो उठा 'मुझ कंगालके यहाँ आज श्रीहरि स्वयं पधारे !'

नरेश कहीं किसी स्थानपर आते, कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। अपनी प्रजाका निरीक्षण करने नरेशको समय-समयपर आना ही चाहिए ; किंतु आचार्य पधारें— सम्पूर्ण ग्रामजनोंको लगता था कि आज उनके यहाँ श्रीवैकुण्ठनाथ ही आ गये हैं।

'आज याचक होकर तुम्हारे यहाँ वत्सनरेश पधारे हैं देवता !' आचार्यने देखा कि वह झोपड़ीका स्वामी कृशकाय गौरवर्ण गृहस्थ तो नरेशकी ओर ध्यान ही नहीं देता है। तो स्वयं बोले—'मैं तो नरेशकी प्रार्थनाका अनुमोदन करने आ गया हूँ।'

'राजन्! क्या सेवा करे यह निर्धन ब्राह्मण आपकी ?' उस अत्यन्त सरल ग्रामीणने अब नरेशकी ओर देखा। अभीतक तो वह आचार्यकी वन्दना-अर्चनामें यह भी भूल गया था कि उसके यहाँ आचार्यके साथ कोई और भी आये हैं।

'राजन् ! सदाचारके सम्यक् पालनमें अभयदेव शर्मा-की समता करने योग्य मैं किसीको नहीं पाता।' आचार्य गम्भीर स्वरमें कह रहे थे—'प्रबल प्रलोभन इन्हें विचलित नहीं कर सके, यह आप भी जानते हैं। प्रकृतिके प्रकोप तथा शरीरका असहयोग भी इन्हें अस्थिर नहीं कर पाता। सदाचार धर्मका दृढ़मूल है और जहाँ धर्म सम्यक् पूर्ण है, जनार्दन स्वतः सुप्रसन्न हैं। अभयदेवने अपने सदाचार तथा दीनजनोंकी सेवासे उस सर्वेशको संतुष्ट किया है। शास्त्रका मर्म ऐसे सत्पात्रमें अप्रकाशित नहीं

रहता। पुस्तकीय पाण्डित्यकी अपेक्षा यहाँ नहीं होती। आप अपने भावी राज्यगुरुकी चरण-वन्दना करें।'

'आज आप अपने देशको, अपने नरेशको और इस वृद्ध अनन्तशंकरको निराश नहीं कर सकते।' आचार्यने उस ब्राह्मणको बोलने ही नहीं दिया—'यह दायित्व आप सम्हाल सकते हैं ऐसी आस्था मुझमें है और आप जानते ही हैं कि अनन्तशंकर अपना आग्रह सरलतासे छोड़ा नहीं करता है। आप आज ही राजधानी चलना स्वीकार करेंगे तो यह बूढ़ा अतिथि आपके यहाँ आहार ग्रहण करेगा।'

अभयदेव शर्माके लिए यह प्रार्थना स्वीकार करनेके अतिरिक्त मार्ग भी क्या रहा था।

सेवा

'यहाँ कोई धर्मात्मा है ?' इस युग में बड़ा अटपटा प्रश्न है यह, किंतु ये बाबाजी लोग कहाँ सीधे ढंगसे बात करना जानते हैं । इनकी रहनी टेढ़ी, इनका वेश अटपटा, इनकी वाणी अटपटी और इनका आराध्य टेढ़ी टाँगवाला । भला यह भी कोई बात हुई कि कोई भरी भीड़से पूछने लगे कि 'उसमें कोई भला आदमी है ?'

अकाल पड़ा है । पिछले वर्ष इन्द्रदेव ने इतनी अधिक कृपा की कि भूमि में पड़ा बीज उगकर भी सड़ गया । अतिवृष्टि किसी प्रकार झेल ली गयी, किंतु इस वर्ष तो मेघोंके देवता भूल ही गये हैं कि इस ओर भी उनकी सेना आनी चाहिए । इस प्रदेशमें भी प्राणी रहते हैं और उन्हें भी जल ही जीवन देता है । आषाढ़ निकल गया तबतक आशा थी ; किंतु अब तो श्रावण भी सूखा ही समाप्त होने जा रहा है।

घरोंमें अन्न नहीं है । खेत और चरागाहोंमें तृण नहीं है। सरोवर सूख चुके हैं । कूपोंमें कीचड़ मिला पानी प्यास बुझानेके लिए रह गया है । कितने दिन वह भी काम चला सकेगा ? ऐसी अवस्थामें पशु कितने

मरे, कौन गिने। जिसे जहाँ सूझा, वह उधर निकल गया परिवार लेकर। पूरा प्रदेश उजड़ने लगा है। वृक्षों-के पत्ते और छाल जब आदमीका आहार बनने लगें, विपत्ति कितनी बड़ी है, कोई भी समझ सकता है। सरकारी सहायता आयी है। कुछ संस्थाएँ भी सेवाके क्षेत्रमें उतरी हैं; किंतु तप्त तवेपर कुछ शीतल बूँदें पड़कर अधिक उष्णता ही तो उत्पन्न करती हैं।

यज्ञ-अनुष्ठान तो हुए ही, अनेक लोकप्रचलित टोटके भी हुए; किंतु गगनके नेत्रोंमें अश्रु उतरे नहीं। देवता रुष्ट हुए सो तुष्ट होनेका नाम ही नहीं लेते। ऐसे समयमें सबसे भारी विपत्ति आती है भिक्षुकोंपर। वे बेचारे बहुत पहिले भाग गये। किंतु कुछ अक्खड़ होते हैं। हनुमत्-टीलेके बाबा बजरंगदास ऐसे ही अक्खड़ हैं। उनकी कुटिया तो आजकल क्षुधार्तोंके लिए कल्पवृक्ष बन गयी है। मध्याह्नमें पवन-पुत्रको नैवेद्य अर्पित करके सदाकी भाँति अब भी बाबाजी उच्चस्वरसे 'भण्डारमें भगवत्प्रसादकी सीताराम!' घोषित करते हैं और उस समय जो कोई भोजनके लिए आ जाय, उसे अपने-आप पंगतमें बैठनेका अधिकार है। इन दिनों प्रतिदिन दो-ढाई सौ व्यक्ति भोजन करते हैं।

पता नहीं कहाँसे आता है इतना अन्न इन जटाधारीके पास। पूछनेपर एक दिन कहने लगे—'यह टेढ़ी टाँगवाला गदाधारी देवता किसलिए यहाँ खड़ा है। भूमिमें अन्न नहीं होगा तो देशका प्रशासक भूखों

मरेगा; किंतु हनुमन्तलालके लाड़िलोंके लिए आकाशको अन्नकी वर्षा करनी होगी।'

ऐसे अडिग अक्खड़ अवधूतने जब आसपास सबको सूचना भेजकर कुटियापर बुलवाया, बड़ी आशा हो गयी थी ग्रामके श्रद्धाप्राण लोगोंको। अवश्य बाबाजी इस दैवी विपत्तिका कोई उपाय पा चुके हैं। किंतु जब सायंकाल श्रीहनुमान्‌जीके सम्मुख आसपासके आठ गाँवोंके लोग एकत्र हो गये तो बाबाजी पूछते हैं— 'यहाँ कोई धर्मात्मा है ?'

कोई और धर्मात्मा हो या न हो, बाबाजी तो हैं। अब देवताके सम्मुख झूठ भी कोई कैसे बोले। धोतीके भीतर सभी नंगे। किससे कुछ ऊँचा-नीचा नहीं होता है। किंतु बाबाजो तो एक-एककी ओर देखने लगे हैं। चुपचाप नेत्र नोचे करलेनेके अतिरिक्त किसीके पास और क्या उपाय है।

'श्रीमारुति प्रभुका आदेश है कि यहाँ इस प्रदेशमें जो एकाकी धर्मात्मा है, उसका आश्रय लिया जाय।' बाबाजी कह रहे थे—'केवल वही इस अकालको टाल सकता है। उसके असम्मानके कारण यह विपत्ति आयी है। देवता भी धर्मका आश्रय लेनेवालेका अपमान करके कुशलपूर्वक नहीं रह सकते हैं।'

'कौन हैं वे ?' सबके हृदय सोचने लगे हैं। कोई भी तो ध्यानमें नहीं आ रहा है। कोई साधु आसपास अब इन महाराजको छोड़कर रहे नहीं। जो दो-तीन

कुटिया बनाकर रहते भी थे, तीर्थयात्रा करने चले गये हैं। कोई ब्राह्मण, कोई विद्वान्, कोई अहीर, काछी आदि भगत—लेकिन इनमें-से किसीका अपमान होनेकी बात तो सुनी नहीं गयी। ऐसे व्यक्तियोंके प्रति तो ग्रामके लोगोंकी सहज श्रद्धा है। अब इस अकालके समयमें किसीको कुछ देनेसे किसीने मना कर दिया हो तो हो सकता है; किंतु क्या विवश मनुष्यका यह ऐसा अपराध है कि उसपर इतना भयंकर देवकोप पूरे प्रदेशको भोगना पड़े ?

'श्रीहनुमान्जी ने कहा है कि उसका पता लगाना होगा।' बाबाजीको स्वप्नमें आदेश हुआ है, यह वे बता गये। उन्होंने यह भी कह दिया कि इससे अधिक स्पष्टीकरणकी आशा अब करना नहीं चाहिए। देवताओं-को परोक्ष-कथन ही प्रिय है। 'आप सब प्रयत्न करें। मैं भी कल प्रातःकालसे पता लगानेमें लगूँगा।'

× × ×

'तुमने कैसे सीखा इस अद्भुत उपासनाको ?' बाबा बजरंगदास आज इस हरिजन बस्तीके एक कोनेपर बनी झोपड़ीके द्वारपर आ गये हैं। श्रीपवनकुमारने जिनका संकेत किया, वे धर्मात्मा कौन हैं, यह पता लगानेकी धुन है उन्हें। जो आस्तिक नहीं है, भगवान्में जिसकी आस्था नहीं है, वह तो धर्मात्मा हो नहीं सकता। गाँवोंमें बसनेवाले लोग एक-दूसरेसे अच्छी प्रकार परिचित होते हैं। बाबा बजरंगदास प्रायः आसपासके ग्रामीणोंको

व्यक्तिगत रूपसे जानते हैं। उनमें जहाँ भी कुछ आशा की जा सकती थी, सबके समीप वे हो आये हैं। आज अचानक उन्हें स्मरण आया कि द्विजाति तथा दूसरे लोगोंसे मिलनेकी धुनमें उन्होंने हरिजन-बस्तियोंकी ओर ध्यान ही नहीं दिया है। स्मरण आते ही वे चल पड़े थे इस झोपड़ीकी ओर।

पूरी चमारटोलीकी झोपड़ियाँ सटकर बनी हैं; किंतु यह झोपड़ी सबसे थोड़ी दूर है। केवल नाम ही इस झोपड़ीके स्वामीका अलगू नहीं है, वह दूसरोंसे सब बातोंमें कुछ भिन्न है। गावोंकी हरिजन-बस्तियोंमें आजकल दो भगत हैं। वे भूमिपर सोते हैं। अपने हाथसे बना भोजन और अपने हाथसे खींचा जल काममें लेते हैं। किंतु बाबा बजरंगदास उन्हें जानते हैं। वैसे भी वे लोग प्रायः प्रतिदिन हनुमत्-टीलेपर पहुँचते हैं। लेकिन अलगू सबसे भिन्न है। उसे अपने लंगड़ बछड़ेसे ही अवकाश नहीं कि कहीं आये-जाये। उसका स्मरण आते ही बाबाजी चौंके थे।

सुनते हैं कि बेटेका ब्याह करके अलगूका बाप मरा था, किंतु स्त्री टिकी नहीं। वह कहीं ग्रौर चली गयी। अलगू तबसे अकेला है। जूते बनाकर पेट पाल लेता रहा है वह; किंतु अब यह धंधा भी चल नहीं रहा। अपनी झोपड़ीमें वह अकेला है, यदि उसके लँगड़े बछड़ेको ग्राप उसका साथी न गिने। अब वह लकड़ियाँ चुनता है, उन्हें लाता है और कुछ न मिले

तो शीशमके पत्ते, झरबेरी, बेल, उदुम्बरके पके फलोंसे अपना काम चला लेता है ।

एक गाय थी अलगू के; किंतु अति वृष्टिमें वह भी ठंडसे अकड़कर चल बसी। गायके बछड़ेका एक पैर बचपनमें ही टूट गया दौड़ते समय किसी दरारमें पड़कर। किसी काम आ सके, ऐसा वह रहा नहीं; किंतु अलगू तो उसे देवता मानता है । पहिले वह गायकी पूजा करता था, तब कुछ समझमें आनेकी बात भी थी । गौ माता हैं । विद्वान पण्डित लोग भी गायको हाथ जोड़ते हैं । गायकी पूजा करते भी लोगोंको देखा गया है । किंतु लँगड़े बछड़ेकी पूजा होती कहीं किसीने सुनी है ? गाय मरी तो अलगू उसके बछड़ेकी पूजा करने लगा। कहता है—'गाय देवी माता हैं तो उनका बेटा देवता कैसे नहीं है !'

आजकल फूल कहीं मिलते नहीं । अलगू आम, नीम या शीशमके पत्तों की माला ही बछड़ेको पहिना देता है । वह उसके चारों खुर धोकर पीता है । बछड़ेको दण्डवत् करता है । बछड़ेके छोड़े घास-पत्तोंमें-से कुछ-न-कुछ पत्ते खा लिया करता है । रातमें बछड़ेके पास ही भूमिपर सोता है । बछड़ा गोबर करे या मूत्र—तुरंत स्वच्छ करेगा । अपने गमछेसे बछड़ेको पोंछता रहेगा । बछड़ा हुंकार करे तो दोनों हाथ जोड़कर उसके सामने सिर झुकाएगा ।

लोग अलगूका परिहास करते हैं । बाबा बजरंगदासने उसकी बातें सुनी हैं । बहुत लोग उसे 'बछड़ा भगत'

कहकर चिढ़ाते हैं। इस वर्ष कुओंका जल घटने लगा, किंतु अलगूकी कुइयांमें पानी आज भी नहीं घटा है। हरिजन बस्तीमें सरकारी कुआँ दो वर्ष पहिले बना है। उससे पहिले हरिजन गाँवके बाहरके कुएँसे पानी लाते थे। पानी लाने गया था अलगू उस कुएँपर तो गाँवके ठाकुरोंके खेतमें पानी जा रहा था उस कुएँसे। अलगूने मोटका पानी न लेकर कुएँसे खींचना चाहा तो ठाकुरने कुछ कहा-सुना। लौटकर अलगू यह कच्ची कुइयाँ खोदनेमें लग गया था। सात दिनमें इस कुइयाँम पानी आ गया था और हरिजनोंके लिये पक्का कुआँ बननेतक यह कुइयाँ हरिजनोंकी पूरी बस्तीको जल पिलाती थी। अब थोड़ी-सी भूमि घेर रक्खी है अलगूने। दूसरा कोई होता तो उसमें चार बेल लगाता कुम्हड़े, तोरईकी; किंतु अलगू उसमें कभी ज्वार बोता है, कभी अरहर, कभी सन और कुछ न हो तो घास। अपने बछड़ेका पेट भरनेको छोड़कर उसे दूसरी चिन्ता ही नहीं रहती। इस अकालमें भी उसका घेरा घाससे हरा है। सबेरे-शाम वह पानी खींच-खींचकर थक जाता है उस घेरेको गीला रखनेके लिए।

आज बाबा बजरंगदासको अचानक स्मरण आया है कि अलगू धर्मात्मा है। वह कहाँ कोई नौकरी व्यापार करता है कि उसे कुछ काला-सफेद करनेको विवश होना पड़े। अचानक ही कल रात बाबा बजरंग-दासने एक पोथी उलटते हुए पढ़ा—'वृषभ धर्मका रूप है।' उन्हें स्मरण हो आया कि पिछले वर्ष जो भागवती

पण्डित आश्रमपर कथा बाँचने आये थे, उन्होंने भी कुछ ऐसा ही कहा था कि 'राजा परीक्षितको बैलके रूपमें धर्मके दर्शन हुए। उस बैलके तीन पैर टूटे हुए थे।' अलगूका बछड़ा भी तो लँगड़ा है। उसके तीन पैर नहीं टूटे हैं तो क्या हुआ, वह पूरा धर्म नहीं सही, धर्मका रूप तो है। अलगू उस बछड़ेकी ही पूजा करता है। तब कहीं हनुमान्जीका संकेत……—।

अलगू तो हक्का-बक्का रह गया कि उसकी झोपड़ीके द्वारपर ये बाबाजी आये हैं। उसके पास तो उन्हें आसन देने योग्य भी कुछ नहीं है। दूर पृथ्वीपर सिर रखकर वह काँपता हुआ खड़ा हो गया है। बाबाजीकी दृष्टि अलगूके बछड़ेपर है। अब यह दो वर्षका बछड़ा बैल लगता है। गलेमें पत्तोंकी माला, मस्तकपर सफेद मिट्टी-का टीका और पासमें गुग्गुलकी धूप जल रही है। अलगू अपनी पूजासे ही उठकर आया है। बाबाजीने फिर पूछा—'यह तुम्हें किसने बताया कि बछड़ेकी पूजा किया करो?'

'मुझ चमारको भला, कौन बतायेगा'—अलगू उसी प्रकार दीन स्वरमें बोला। 'बाप गायकी पूजा करता था। मैं भी बचपनसे वही करने लगा। एक बार काशी-जी गया था। दशाश्वमेधघाटकी सीढ़ियोंपर एक नंगे सन्त रहते थे। कोयलेकी भाँति वे काले थे और उनकी आँखें लाल-लाल थीं। उन्होंने सीढ़ियोंपर ही एक काला बछड़ा लोहेकी जंजीरमें बाँध रखा था। बछड़ेके गलेमें

फूलोंकी माला मैंने देखी थी। कोई बाबाजीको पूड़ी, मिठाई या फल देता था तो बछड़ेके आगे रख देते थे। बछड़ा खा लेता तो उसमें-से बचा-खुचा स्वयं खा लेते। बछड़ा सूँघकर छोड़ देता था तो फेंक देते थे।'

'ओह, तो उन महात्माने तुम्हें यह बताया है। तुम उनके शिष्य हो।' बाबा बजरंगदासने श्रद्धापूर्वक कहा।

'वे तो मौन रहते थे। मुझ-जैसे पापी चमारको भला, वे चेला क्यों बनाते।' अलगू सहज भावसे बोला। 'मैं तो दूरसे उनके सामने मत्था टेककर चला आया था। मेरी गौ माता मर गयीं तो मुझे उन महात्माकी याद आ गयी। मैं गौ माताके बछड़ेकी सेवा करने लगा। एक बार एक पण्डितजीने बताया था कथामें कि कलियुगमें सेवा ही बड़ा धर्म है। मुझ नीच जातिसे आप-जैसे महात्मा या कोई ब्राह्मण तो सेवा करायेंगे नहीं, गौ माताके बेटेकी सेवा करता हूँ।'

'भाई अलगू, मैं साधु हूँ और तुम्हारे दरवाजेपर आया हूँ।' बाबा बजरंगदासने विनयके स्वरमें कहा। 'तुमसे भिक्षा माँगता हूँ। साधुको नहीं करोगे तो पाप होगा। तुमको कभी ठाकुरने गालियाँ दी थीं, उनको क्षमा कर दो।'

'इसमें क्षमाकी बात क्या है। चमारको तो बड़े लोग गाली देते ही हैं।' अलगू बड़ी दीनतापूर्वक बोला। 'महा-राज, ठाकुर-ब्राह्मणोंकी गाली तो हमारे लिए आशीर्वाद

है। आप कहाँकी कितनी पुरानी बात उठा लाये हैं। मैं तो उसी दिन भूल गया उस बातको।'

'तुम भूल गये; किंतु तुम्हारे ये धर्मदेवता नहीं भूले हैं। यह अकाल इस प्रदेशपर इनके कोपसे आया है।' बाबाजीने हाथ जोड़ दिये। 'मैं तुमसे क्षमा माँगने, प्रार्थना करने आया हूँ कि लोगोंपर, यहाँके पशु-पक्षी आदि सभी प्राणियोंपर दया करो। तुम इनसे प्रार्थना करोगे तो अवश्य वर्षा होगी।'

'महाराज! मेरे प्रार्थना करनेसे वर्षा हो जाय, लोगोंकी विपत्ति मिटे तो मैं क्यों प्रार्थना नहीं करूँगा। मैं ही क्या कम विपत्तिमें हूँ वर्षा न होनेसे?' अलगूने भूमिपर सिर रखा। 'किंतु आप मुझे अपराधी मत बनाओ। मुझे आप आशीर्वाद दो।'

बाबा बजरंगदासके बिदा होते ही अलगू अपने लँगड़े बछड़ेके पैरोंके पास हाथ जोड़कर बैठ गया—'देवता! तुम वर्षा करा सकते हो! वर्षा कराओ देवता! पानी बरसने दो। सबकी विपत्ति दूर होने दो। वह आँख बन्द किये बोलता जाता था। उसे पता भी नहीं था कि वायुका वेग कब बढ़ा। कब आकाश भूरे घने मेघोंसे ढक गया। उसने तो चौंककर तब बछड़ेके सम्मुख मस्तक रखा, जब मेघ-गर्जनके साथ झड़ीकी बूँदोंने द्वारसे आकर उसकी पीठ भिगो दी।

सहानुभूति

'जेना कहाँ हैं !' प्रातःकाल जलपानकी मेजपर छोटी पुत्रीको न देखकर गृहपतिने साधारणभावसे ही पूछा।

'जेना ! अरी जेना ! कहाँ है तू ?' माता ने वहींसे पुकारा और जब कहींसे कोई उत्तर नहीं मिला, अपनी अत्यन्त चञ्चला कन्याको वे ढूँढ़ने उठीं। वह कहीं तितलियोंके पीछे फुदकती होगी अथवा खेतमें खरगोशके पीछे भाग रही होगी।

'जेना बड़ी सड़कपर जा रही थी।' अचानक इस दम्पतिका पुत्र वहाँ आ गया—'फूलोंकी डलिया थी उसके हाथ में। मैंने दूरसे पुकारा तो केवल हाथ हिला दिया उसने।'

'वह कहीं आज फिर अपोलोके यहाँ तो नहीं चली गयी ? भारी-भरकम शरीरवाली गृहस्वामिनीके मस्तकपर पसीनेकी बूँदें आ गयीं। वे लौटीं कक्षकी ओर और दूरसे ही बोलीं—'तुम्हारी लाड़ली जेना आज फिर उस जादूगरनीके यहाँ चली गयी। और उसे सिर चढ़ाओ।'

'कहाँ गयी जेना ?' गृहपति ऐसे चौंककर उठे, जैसे उन्हें बिच्छूने डंक मार दिया हो।

'वह तो कबकी पहुँच गयी होगी ।' उनके बड़े पुत्रका स्वर भी शिथिल हो गया था । परिस्थितिकी गम्भीरता अब उसकी समझमें आ गयी थी । उसने अनुभव किया कि वह स्वयं कम दोषी नहीं है । जब उसने अपने प्रातःकालीन भ्रमणसे लौटते समय अपनी छोटी बहिनको जाते देखा था, तब उसे लौटा लानेका यत्न उसने क्यों नहीं किया; किंतु उसे पता क्या था कि वह नन्हीं लड़की कहाँ जा रही है ।

'हे भगवन् !' गृहपति धमसे गिर गये आरामकुर्सीपर और दोनों हाथोंसे सिर पकड़ लिया उन्होंने ।

'अब क्या होगा !' गृहस्वामिनीकी आँखें स्थिर हो गयी थीं । वे अपने पतिके कंधोंपर दोनों हाथ रखकर कुर्सीके पीछे ही खड़ी रह गयीं ।

अभी कल ही उनकी जेना उस जादूगरनीके यहाँ गयी थी । कितने रुष्ट हुए थे उपासना-गृहके प्रधान पुजारी । किंतु कलकी बात आज तो नहीं हो सकती । 'योग किप्पूर' का पवित्र दिन वर्षमें कोई बार-बार तो आता नहीं । अब आज जब यह समाचार सबको मिलेगा - समाजके लोगोंका जो रोष इस परिवारपर उतरेगा, वह तो है ही; यहोवाका क्रोध, पता नहीं, कौन-सी विपत्ति ढाहेगा ।

वह दस वर्षकी गोल मुख— सुनहले केश, भूरी भोली आँखोंवाली गोलमटोल गुड़िया-जैसी चञ्चल बालिका जेना । वह बच्ची अभी कुछ समझती ही

नहीं। कल भी वह अपोलोके यहाँ चली गयी थी इसी प्रकार बिना किसीसे कुछ कहे।

'बेचारी बुढ़िया बहुत बीमार है। उससे उठा बैठा भी नहीं जाता। उसे कोई पानी देनेवाला भी नहीं।' कल सीधे उपासना-मन्दिरमें बाहरसे दौड़ी-दौड़ी जेना आयी। प्रार्थनाका प्रमुख पर्व, भीड़से भरा उपासना-गृह और उस भीड़में सीधे प्रधान पुजारीके पास जाकर उनका लबादा पकड़कर कहने लगी—'मैंने उसके लिए यहोवासे प्रार्थना की है। आप भी उसके लिए प्रार्थना करें।'

'तू किसकी बात कर रही है?' प्रधान पुजारीने स्नेह पूर्वक जेनाके कपोल थपथपाकर पूछा था।

'वह जो नगरके बाहर थूहरोंके घेरे में सफेद बालों-वाली बुढ़िया रहती है।' जेनाने बालसुलभ सरलतासे कहा। 'वह जानवरोंकी भीड़ जुटा रखनेवाली पोपले मुखकी बुढ़िया अपोलो बीमार है।'

'तू उसके यहाँ गयी थी!' प्रधान पुजारी चौंककर दूर हट गये 'तूने मुझे भी छूकर अपवित्र किया।'

'वह अच्छी बुढ़िया है! बीमार है इन दिनों। उसे पानी देना था।' जेनाके नेत्रोंमें सरलतामात्र थी।

'यह बच्ची है। मैं क्षमा चाहता हूँ इसकी ओरसे।' जेनाके पिता प्रधान पुजारीके सम्मुख आ गये थे। पश्चात्तापसे उनका स्वर भर आया था। पुत्रीको खींचकर पीछे कर दिया था उन्होंने।

'अच्छी बात !' प्रधान पुजारीके मुखपरसे रोषकी रेखाएँ मिटी नहीं थीं; किंतु कल 'योमकिप्पूर' का (अपराध-क्षमापनका) पवित्र दिन था। मनुष्य यदि मनुष्यके अपराध क्षमा नहीं करेगा तो यहोवा (परमात्मा) से अपने अपराधकी क्षमा पानेकी आशा वह कैसे कर सकता है। बड़े-से-बड़ा अपराधी इस पवित्र दिन क्षमा माँगे तो उसे क्षमा करना ही पड़ता है। उसके अपराधकी फिर चर्चा या चिन्तन कोई नहीं करता। ऐसे पवित्र दिन नन्ही जेनाके अपराधकी क्षमा उसके पिताने माँगी तो प्रधान पुजारी क्षमा-दानके लिए स्वतः विवश था।

'पर उस जादूगरनीको क्षमा नहीं मिलेगी।' प्रधान पुजारीने अपनी झुंझलाहट दूसरे रूपमें प्रकट की। 'उसकी ओरसे कोई क्षमा-प्रार्थना करेगा तो उसे भी क्षमा नहीं किया जायगा।'

भला, उसकी ओरसे कोई क्षमा-प्रार्थना करेगा भी क्यों ? कौन नहीं जानता कि वह यहोबाकी अपराधिनी है। ईश्वरको मानती ही नहीं। अपनी युवावस्थाकी यरूशलमकी वह कुख्यात गणिका अब वृद्धावस्थामें जादूगरनी बन गयी है। उसने शेर, चीते, रीछ, सर्प, पता नहीं क्या-क्या पाल रक्खे हैं। सुना तो यह भी जाता है कि शैतान भी उसके वशमें है। चोर, डाकू, बदमाश, उचक्के आदि सब देश तथा समाजके शत्रु उसके यहाँ आश्रय पाते हैं। उसे अपनी झोपड़ीके साथ कबका फूँक दिया गया होता; किंतु किसीका

साहस ही उधर जानेका नहीं होता। वह जादूगरनी जो ठहरी, क्या पता उसने अपने शत्रुओंको ही कुत्ता, गधा, रीछ बनाकर अपने यहाँ पाल रक्खा हो।

किंतु तथ्य यह है कि नगरके इतने निकट रहनेपर भी वृद्धा अपोलोके सम्बन्धमें कोई ठीक-ठीक कुछ नहीं जानता। भाँति-भाँतिकी बातें उसके सम्बन्धमें कही-सुनी जाती हैं। परंतु कोई उसके थूहरोंके घेरेके समीप भीतर झाँकने भी जानेका साहस नहीं कर पाता। वह एक आतङ्क है नगरके लोगोंके लिए।

ऐसे भयावह स्थानपर जेना पता नहीं कैसे चली गयी। वह कबसे जाती है, यह भी किसे पता है। पहली बार कल पता लगा; किंतु कल था 'योगकिप्पूर' का पवित्र दिन। अब आज क्या होगा? वह तो आज फिर वहीं पहुँच गयी है।

× × ×

'जेनाको त्याग देना होगा!' उपासना-गृहके प्रधान पुजारीने सायंकालीन प्रार्थनाके पश्चात् नगरजनोंकी उपस्थितिमें जेनाके पिताको अपना निर्णय सुना दिया। बड़ा उदास स्वर था उनका। अपने निर्णयके लिए वे स्वयं बहुत क्षुब्ध—विवश जान पड़ते थे। 'उसके जादूके प्रभावमें यह सम्पूर्ण रूपसे आ चुकी है। देश समाज तथा यहोबाके शत्रुको क्षमा नहीं किया जा सकता। इसे घरमें रखना हो तो आपको भी नगर त्याग करना

पड़ेगा। इसके साथ आपको न समाजमें सम्मिलत रहनेकी अनुमति दी जा सकती है और न नगरमें रहनेकी।'

'मुझे क्षमा करें! इस प्रकार शैतानका बल बढ़ा रहे हैं आप।' एक युवक अबतककी परम्पराके सर्वथा विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। नन्हीं जेनाके भोले मुखको देखकर उसे सहानुभूति हो आयी थी। यद्यपि प्रधान पुरोहितका प्रतिवाद करना अपने-आपमें बड़ा अपराध था, फिर भी उसका अन्तर इस समय विद्रोह कर उठा था। 'वह बुढ़िया बीमार है। आज या कुछ कालमें मर-खप जायगी; किंतु जेनाको हम बहिष्कृत कर देंगे और यह उसका आश्रय ले लेगी तो बुढ़िया अपना जादू इसे सिखाकर मरेगी। यरूशलमके सिरसे विपत्तिके बादल, जो शीघ्र टल सकते हैं, यहीं जमकर रह जायँगे।'

'यदि श्रीमिडहोम (जेनाके पिता) सपरिवार उसके यहाँ चले गये?' युवककी बातका प्रभाव सभी उपस्थित लोगोंपर पड़ा था। सब इस आशङ्कासे ही काँप उठे थे कि यह सुन्दर बच्ची भी जादूगरनी बन सकती है और अनेक वर्षों तक उन सबसे गिन-गिनकर बदला लेती रह सकती है। एक अन्य तरुणने उठकर इस आशङ्काको अत्यधिक बढ़ा दिया—'यह निर्णय तो विपत्तिको बहुत बढ़ानेवाला है। इससे समाजका सर्वनाश सम्भव है। शैतानके बलको बढ़ानेवाला कोई निर्णय नहीं होना चाहिए।'

'यहोबा !' प्रधान पुजारीने आकाशकी ओर दृष्टि उठायी—'मुझे प्रकाश दो, प्रभु !'

'यहोबा ! यहोबा !' प्रधान पुजारी प्रार्थना प्रारम्भ भी नहीं कर सके थे कि एक गड़रिया दौड़ता-हाँफता भीड़में घुसता चला आया। नंगे पैर, फटा मैला पाजामा, फटी कमीज, तिनकों और धूलिसे भरे सिर तथा दाढ़ीके केश। उसके शरीर तथा वस्त्रोंसे पसीनेके साथ भेड़ोंकी देहसे निकलने वाली दुर्गन्ध आ रही थी। किंतु उसका ध्यान न अपनी ओर था और न उपासना-गृहमें उपस्थित भीड़की ओर। वह सीधा प्रधान पुजारीके सम्मुख आया और झुककर उसके चोगेका छोर चूमते हुये बोला—'कोह सुलेमानका तपस्वी उतर आया है। वह यरूशलमकी ओर आ रहा है। मेरे बेटेने उसे आते देखा है। वह आजसे चार दिन दूरके चरागाहसे कल रात भागता, घोड़ा दौड़ाता कल घर आया। मैं तुरंत आपको सूचित करने घोड़ेपर बैठ गया था।'

'कोह सुलेमानके तपस्वी आ रहे हैं नगरकी ओर !' वहाँ उपस्थित नागरिकोंमें कानाफूसी होने लगी। सबके लिए यह उत्साह-वर्धक समाचार था। इतने बड़े तपस्वीके स्वागत-समारोहकी रूप-रेखा भी सोचना लोगोंने प्रारम्भ कर दिया।

'अभी जेनाके अपराधका विचार स्थगित कर दिया जाय।' प्रधान पुजारीने घोषणा की। 'वह अभी अपने

परिवारमें रहे । वे महान् तपस्वी आ रहे हैं । हम उनसे ही प्रार्थना करेंगे कि इस विषयमें हमें क्या करना चाहिए, यह आदेश दें ।'

× × ×

'ये तपस्वी कहाँ जा रहे हैं ?' यरूशलमके नागरिकों-को तथा वहाँके उपासना-गृहके पुजारियोंको भी इस बातसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ था कि तपस्वीने तब मस्तक नहीं उठाया, जब नगरसे बाहर पर्याप्त दूर आकर उन लोगोंने स्वागत किया । तपस्वीने किसीकी ओर नेत्र उठा कर नहीं देखा । जयघोष, वन्दना तथा अन्य स्वागतकी क्रियाओंपर उसने किंचित् भी ध्यान नहीं दिया । जैसे वह कुछ नहीं सुनता, कुछ नहीं देखता और उसके सम्मुख यह मनुष्योंकी भीड़ है ही नहीं, इस प्रकार चलता रहा । इस सबसे कोई चकित नहीं हुआ; किंतु तब लोग चौंके जब तपस्वी बुढ़िया जादूगरनीके थूहरोंवाले घेरेकी ओर मुड़ा ।

कोह सुलेमानका यह तपस्वी—सुना जाता है कि वर्षोंसे यह इसी प्रकार मौन है । किसीकी ओर देखता नहीं । किसीसे कोई संकेत नहीं करता । गड़रिये जो दूध और पनीर उसके पास रख जाते हैं, उसमें-से बहुत थोड़ा खाता है । शेष कुत्ते चट कर जायँ या कौवे, उसे पतातक नहीं लगता । किसोने उसे हँसते-रोते या बोलते नहीं देखा । एक लबादा—वही या वैसा ही लबादा उसकी देहपर होता है, जैसा आज है । सर्दी पड़े या गरमी, आकाशसे पानी गिरे या बर्फ, वह अपनी चट्टानपर चुप-

चाप लबादा ओढ़े बैठा रहता है। आज पता नहीं कितने वर्षोंके बाद उतरा है वह पहाड़से।

थूहरोंके घेरेके समीप आकर सब ठिठक गये। एक अज्ञात भयसे प्राय: सबके शरीरमें रोमांच हो आया—पता नहीं वहाँ भीतर क्या है? वहाँ जानेपर किसके साथ क्या बीते? प्रधान पुजारी तथा उसके कुछ शिष्योंके साथ नगरके थोड़े ही लोगोंने तपस्वीके पीछे घेरेमें जानेका साहस किया। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहाँ चौंकानेवाली कोई बात यदि है तो केवल एक बहुत बूढ़ा रीछ है, जो घेरेके एक कोनेमें इस प्रकार पड़ा है, मानो बीमार हो। दो गधे, तीन कुत्ते, एक बकरा—बस, ऐसे ही दो-तीन और छोटे पशु वहाँ थे। साधारण साग-सब्जीकी खेती भी कुछ क्यारियोंमें थी; किंतु पशुओंको चरनेकी छुट्टी जान पड़ती थी। थोड़े-से फूलोंके जंगली पौधे इधर-उधर उगे थे।

तपस्वीके पीछे द्वारपर पहुँचते ही प्रधान पुजारीने देखा कि भीतर खाटपर बुढ़िया पड़ी है। आज भी जेना यहाँ आ गयी है और कुछ पिला रही है इस रोगिणी जादूगरनीको। कहीं भी तो उसका झोला (जो जादूगरनीके पास होना ही चाहिए) नहीं दीखता। प्रधान पुजारी कुटियामें चारों ओर दृष्टि दौड़ा गया। उसे वहाँ खापड़ियाँ, बंदरके सूखे पंजे, रीछका सिर—पता नहीं क्या-क्या देखनेकी आशा थी; किंतु कुटियामें तो केवल दो-चार बर्तन, एक घड़ा और एक चूल्हा भर दीखा उसे।

'आप मुझपर कृपा करें ! मैं दूरसे आया हूँ।' तपस्वीके स्वरने प्रधान पुजारीको चौंकाया। तपस्वी तो बीमार बुढ़ियाके कदमोंपर सिर रगड़कर रो रहा है— 'मैं पूरी आधी शतीसे आराधनामें लगा हूँ, इसके प्रमाण मेरे ये केश हैं ! अबतक मेरी आराधना अस्वीकार ही हुई है।'

छोटी जेना एक ओर डरकर खड़ी हो गयी थी। पुजारी द्वारपर ही ठिठककर रुक गया था। उसके साथ आनेवाले कुटियासे बाहर ही रह गये थे; क्योंकि पुजारी-के खड़े रह जानेसे द्वार रुक गया था। तपस्वी अपनी जटाओंसे बुढ़ियाके पैर पोंछ रहा था; क्योंकि वे पैर उसीके आँसूसे गीले हो गये थे। वह बहुत वर्षोंके बाद आज बोल रहा था—'मुझे अकस्मात् यहोबाकी वाणी सुनायी पड़ी। उस वाणीने आदेश दिया कि मैं आपके दर्शन करूँ और आपसे मार्गदर्शन प्राप्त करूँ। मुझपर आप कृपा करें।'

'मैं नहीं जानती कि परमात्मा कैसा है और कैसे उसे प्रसन्न किया जाता है। मैं तो पापजीविनी वेश्या थी। बुढ़ापा आया तो मेरा व्यापार बन्द हो गया। अनाथ होकर यहाँ झोंपड़ीमें आ गयी।' वृद्धा धीरे-धीरे रुक-रुक कर बोल रही थी। 'बचपनसे इतना जानती हूं कि दुखी प्राणी सहानुभूतिका पात्र होता है। युवावस्थामें जो धन कमाया, वह सब दुखियोंकी सेवामें लग गया। अब भी मैं यह देख नहीं पाती हूँ कि मेरे यहाँ आनेवाला कौन है—

कैसा है। आहत, असहाय, रोगी, मनुष्य हो या पशु—मैं सहानुभूतिके अतिरिक्त उसे दे भी क्या सकती हूँ। किंतु सच पूछिये तो सहानुभूतिकी देवी है यह नन्हीं बच्ची। इसकी सहानुभूतिने मुझे भी सहारा दिया है। दुखी प्राणियोंसे सहानुभूति—मैं इतना ही जानती हूँ।'

× × ×

तपस्वी तत्काल लौट गया। वृद्धाने उसी दिन शरीर छोड़ दिया; किंतु जेना देवी मान ली गयी उस समाजमें, ऐसा सुना गया है।
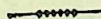
सादगी

उनके शरीरमें बहुत अधिक फुंसियाँ थीं। उनमें जलन रहती थी। खुजली होती थी। प्रायः आँव पड़ती थी। भूख लगती नहीं थी। सिरमें दर्द होना साधारण बात थी। दूसरे भी अनेक रोग थे। वे बहुत सम्पन्न थे। समाजमें प्रतिष्ठा थी। अच्छे समझदार तथा उच्च शिक्षा प्राप्त थे। भव्य शरीर मिला था उन्हें अपने शुभकर्मोंके फलस्वरूप; किंतु रोगोंने उन्हें युवावस्थामें ही जर्जर बना दिया था।

'भाई साहब!' वे मुझे इसी प्रकार पुकारते थे। सजातीय होने तथा आयुमें छोटे होनेसे उन्होंने इसे अपना अधिकार मान लिया था कि मुझे बड़ा भाई मानकर खुला व्यवहार करें। बहुत दुखी होकर आज वे आये थे—'अब तो शरीर छोड़ देनेको जी करता है।'

उन्होंने डाक्टर-वैद्योंकी बहुत चिकित्सा कर ली थी। अनेक बड़े नगरोंमें घूम आये थे। खूब इंजेक्शन लगे थे और चूर्ण, गोलियाँ, अवलेह कितना खाया था, कुछ ठिकाना नहीं था। तैल, मरहम आदि भी भरपूर मला गया था। ओषधिके बिना भी मनुष्य दो-चार दिन जी सकता है,

यह सोचना ही कठिन था उनके लिए । उनका कहना था—'मैं तो दवा खाते ही पैदा हुआ । दवा मँहमें पहले गयी, माताका दूध पीछे मिला ।'

मैं चिकित्सा-व्यवसायी नहीं हूँ । किसी भी चिकित्सा-पद्धतिका अच्छा जानकार भी नहीं हूँ । आयुर्वेद, होम्योपैथी तथा प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिसे थोड़ा-थोड़ा परिचय है और कोई पीड़ित हो तो उसका उपचार करना अच्छा लगता है । इसलिए कुछ ओषधियाँ भी रखता हूँ । सच पूछिये तो आस्तिक होनेके कारण मैं भाग्य-बिधानमें आस्था रखता हूँ । इसलिए किसी चिकित्सा-पद्धतिमें मेरा आग्रह तथा आस्था नहीं है । रोग कर्म भोग है । कर्म फलका भोग होनेपर मिटते हैं और अशुभ कर्मके फलोदय काल आनेपर होते हैं । चिकित्सा भी एक प्रकार-का प्रायश्चित्त है अशुभ कर्मोंका । अतएव जो रोगी सामने आया है, उसका कष्ट निवारण जैसे भी शीघ्र एवं सरलतापूर्वक सम्भव हो, वही पद्धति ठीक । विभिन्न व्यक्तियोंके लिए विभिन्न पद्धतियाँ उपयुक्त हो सकती हैं, ऐसी मेरी धारणा है ।

गर्मीकी ऋतु थी; किंतु वे सुसभ्य व्यक्ति हैं । समाजमें सुसंस्कृत एवं सम्मानित माने जाते हैं । अंग्रेजी शिक्षा तथा वेश उन्हें प्रिय है । मेरे पास वे कोट-पतलूनके पूरे वेशमें ही आये थे । मैंने उन्हें जब देखा, इसी वेशमें देखा है ।

'देखो महेश, तुम अच्छे हो सकते हो! तुम्हें केवल कुछ महीने अपने-आपको मेरे निर्देशके अनुसार चलानेको

प्रस्तुत करना पड़ेगा।' मैंने उनसे कहा—'निराश होनेकी कोई बात नहीं है।'

'मैं अभी—इसी क्षणसे प्रस्तुत हूँ।' उनके स्वरमें मुझे दृढ़ता तथा सच्चाईकी झलक मिली।

'ठीक है। इसी क्षणसे श्रीगणेश करो!' मैंने उनसे कहा—'देखो यह आश्रम है। यहाँ संकोच करनेकी आवश्यकता नहीं है। यह कोट, कमीज, पतलून उतार डालो। जाँघिया और गंजी बहुत हैं इस मौसममें इस स्थानपर।'

मैं केवल धोती पहने खुले शरीर बैठा था, अतः उनको मेरी बात माननेमें कठिनाई नहीं हुई। मैंने उनसे कहा—'यह तुम्हारी चिकित्साका पहला पाठ है। इन वस्त्रोंको घर जाकर विदा कर दो। खादीकी धोती-कुर्ता पहिनकर तुम अपने सभ्य परिचितोंमें मजेसे जा सकते हो।'

× × ×

'आज तुम्हारा पेट भरा नहीं होगा।' आश्रममें भोजनकी घंटी बजी तो महेशने भी हम सबके साथ ही भोजन किया था। गेहूं-चनेके मिले आटेकी रूखी रोटियाँ, मोटे चावलका भात, बिना छौंककी दाल और बिना मिर्च-मसालेका उबला हुआ लौकीका शाक। आश्रमके चौकेमें घी जाता ही नहीं। जो व्यक्ति खूब घी-मसालेसे भरपूर चटपटा भोजन करता आया है, अचार चटनी, तीन-चार शाक, कोई मीठी वस्तु जिसके प्रतिदिनके भोजनके

अनिवार्य अङ्ग है, उसकी तृप्ति आश्रमके भोजनसे कैसे हो सकती थी।

'भाई साहब! आज मेरा पेट खूब भरा है।' महेशने अपने उत्तरसे मुझे प्रसन्न किया—'मुझे तो यह भोजन बहुत प्रिय लगा है।'

'यह तुम्हारी चिकित्साका दूसरा पाठ है—सादगीका दूसरा पाठ। तुम्हारे घरके भोजनालयमें अब यह आदर्श रखकर भोजन बनेगा!'

'लेकिन घरमें और लोग भी हैं।' महेशने आपत्ति की—'बाहरके अतिथि भी आया ही करते हैं।'

'इस भ्रमको मनसे निकाल दो कि मिर्च-मसाला, अचार-चटनी तथा मिठाईके बिना भोजन रुचिकर नहीं होता। तुम्हारे-जैसी ही रुचि दूसरोंकी भी है और तुम देखते ही हो कि यह भोजन तुम्हें प्रिय लगा है।' मैंने समझाया—'मक्खन और घी अपने यहाँ चलने दो; किंतु कम कर दो। खटाई-मिर्च जो चाहें, उन्हें देनेकी व्यवस्था रक्खो। मेवे तथा फल बढ़ा दो भोजनमें। फलतः किसी को तुम्हें दरिद्र या कृपण कहनेका अवकाश नहीं रहेगा। तुम इसी अयशसे तो घबरा रहे हो।'

'मुझे बाहर मित्रोंके यहाँ जाना पड़ता हैं।' महेशने यह कठिनाई ठीक ही सूचित की।

'जहाँतक सम्भव हो, ऐसी गोष्ठियोंसे बचो!' मध्यम मार्ग ही निकालना आवश्यक था—'अवसर आनेपर चाय,

काफी तथा शीतल पेय कम-से-कम लो। जहाँतक सम्भव हो, नहीं लो तो अच्छा। भोजन ही करना पड़े तो थोड़ा खाकर, मिर्च-मसालेके पदार्थ छोड़कर, कुछ भूखे पेट उठनेमें हानि नहीं है। पेटको उस समय या पीछे भी फल खाकर भर ले सकते हो।'

'मैं प्रयत्न करूँगा!' विदा होते समय महेश केवल इतना कह गये थे। उनके स्वरमें उत्साह नहीं था। मैंने उन्हें कोई ओषधि नहीं बतलायी थी। जो व्यक्ति देशके सुयोग्य चिकित्सकोंका उपचार कर चुका हो, उसे ओषधि बतलानेकी भूल करनेसे मैं प्रायः बचता हूँ; क्योंकि ऐसी अवस्थामें दोष कहीं ऐसे स्थानपर होता है, जहाँ चिकित्सा सिद्धान्त सामान्यतः संकेत नहीं करते।

'भाई साहब!' महेश मुझे केवल दो महीने बाद मिले उसके और बहुत प्रसन्न दिखाई पड़े। उनके शरीर-पर इस बार हिमश्वेत धोती-कुर्ता था तथा पैरोंमें चप्पल। उल्लासपूर्वक उन्होंने बतलाया—'आपकी सादगीके दोनों पाठ मेरे लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुए हैं। क्या आप अगला पाठ देना आज ठीक समझते हैं?'

उन्हें भूख लगने लगी थी। आँव पड़ना बंद हो गया था। शरीर अभी पूर्णतः रोगरहित नहीं हुआ था; किंतु आशा हो गयी थी कि स्वास्थ्य प्राप्त हो जायगा। बड़े उल्लासपूर्वक उन्होंने कहा—'मैंने पिछले पूरे एक महीनेसे कोई ओषधि नहीं खायी है। अब विश्वास हुआ है कि मैं ओषधि-सेवनके बिना भी जीवित रह सकता हूँ।'

'अब भी बहुत कुछ करना शेष है।' मैंने उनसे कहा–'मैं मानता हूँ कि भोजन तथा वस्त्रकी सादगी ही सम्पूर्ण सादगी नहीं है। आडम्बरपूर्ण वाणीका भी त्याग होना चाहिए। साथ ही व्यवहारमें भी सहजता-सरलता होनी चाहिए। मानसिक स्वास्थ्य उत्तम रहे बिना शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम नहीं रह सकता और मानसिक स्वास्थ्य उत्तम रहे, इसके लिए व्यवहार तथा वाणीमें सादगी अपेक्षित है।'

'आपका यह तीसरा पाठ बहुत कठिन है।' वे हँस कर बोले—'लेकिन यह अन्तिम पाठ है न ?'

वे ऐसी भाषा बोलते हैं, जैसी भाषा साहित्यिक निबन्धोंमें लिखी जाती है। शुद्ध हिंदीका आग्रह उन्हें नहीं है। अरबी, फारसी, अंग्रेजीके शब्दोंकी भरमार रहती है संस्कृत शब्दोंके साथ; किंतु बोलनेकी शैली, स्वरोंके उच्चारण, अङ्ग तथा हाथ-पैरका संचालन सब अद्‌भुत एवं नाटकीय। उनके व्यवहारमें भी लखनऊके पुराने नवाबोंका आडम्बर झलका करता है। अतः अपना पूरा स्वभाव बदलना उन्हें कठिन लगना ही था।

'केवल एक पाठ' और मैंने भी हँसकर ही कहा—'लेकिन उसके लिए इस बार आपको मेरे साथ व्रजकी यात्रा करनी है।'

× × ×

एक दो-मंजिलका छोटा मकान था वह, जिसमें हम लोगोंने प्रवेश किया। वृन्दावनसे एक साधुको मैं अपने

साथ ले आया था; क्योंकि वे व्रजके स्थलोसे परिचित थे। महेश भी इस बार व्रजयात्रामें मेरे साथ थे।

एक दुर्बल देह, श्यामवर्ण, श्वेतकेश वृद्ध चटाईपर बैठे मिले उस मकानके ऊपरके कमरेमें। मस्तक तथा दाढ़ीके केश सम्भवतः पंद्रह दिनके बढ़े थे। शरीरपर बगलबंदी और कटिमें एक वस्त्रखण्ड। वस्त्र स्वच्छ थे; किंतु मटमैले लगते थे। घरपर हाथसे धुले कपड़ोंमें जितनी सफेदी हो सकती है, उतनी उनमें थी। कमरेमें चारों ओर पुस्तकें फैली हुई थीं।

'नीचे नारायणजी थे?' मेरे साथके साधुने पूछा।

'हाँ, उसे बिलायत जाना है। इसलिए मैंने छः महीनेके लिए अपने पास बुला लिया है।' उन्होंने बताया—'वहाँके कृत्रिम तथा विलासी जीवनमें सुरक्षित रह सके, इतना अभ्यास यहाँ छः महीने रहनेपर उसे हो जायगा।'

विशेष पूछनेपर पता चला कि नारायण उनके पुत्रका नाम है। इस वर्ष एक विश्वविद्यालयमें विज्ञानसे एम. ए. करनेमें उन्होंने सर्वोच्चताके अङ्क प्राप्त किये हैं। देशकी सरकारने विशेष प्रशिक्षणके लिए इंगलैंड भेजना स्वीकार किया है उन्हें और सरकारके व्ययपर उन्हें जाना है। सपत्नीक वे जायँगे। अतः यहाँ पिताके पास सपत्नीक संयम तथा सादगीका प्रशिक्षण प्राप्त करने आये हैं।

घुटा सिर, बड़ी-सी चुटिया, घुटनोंसे ऊपरतक ही कटिवस्त्र, मटमैली बगलबंदी—इस वेशमें एक स्वस्थ

सबल युवक हमें इस भवनमें प्रवेश करते ही मिला था। वह उसी समय एक बड़े टोकरे भर घास छीलकर लाया था और कुट्टी काटनेकी तैयारीमें था। मैं चौंक गया, जब मुझे बताया गया कि वही युवक नारायणजी थे। साथ ही यह भी पता लगा कि नारायणजीकी पत्नी नीचे चक्की चला रही हैं।

हमलोग देरतक बैठे रहे। चलनेसे पहले ही पूछा गया—'भोजन करेंगे आपलोग ?'

'भोजन तो नहीं करेंगे।' उन साधुने ही कहा—'किंतु बुआजीके हाथकी रोटीका एक-एक टुकड़ा प्रसादस्वरूप अवश्य लेंगे।'

उन पण्डितजीके साथ उनकी वृद्धा बहिन भी रहती हैं। उन वृद्धाको ही साधुने 'बुआजी' कहा था। हमलोगों को एक-एक रोटी और थोड़ी-थोड़ी दाल (यदि उसे दाल कहा जा सके) दी गई। गेहूँ, चना, जौ, चावलके कण, दालके कण आदि पता नहीं कितने अन्नोंके मिश्रित आटे की वह रोटी थी और दाल—उस चार-पाँच व्यक्तियोंके परिवारके लिए ढाई तोले दाल बनाई जाती थी। दालमें पानी ही था गरमा-गरम, किंतु उसमें हल्दी, नमकके अतिरिक्त हर्र, आँवला, पीपलके टुकड़े तथा कुछ शाकके टुकड़े भी डाले गये थे।

'भाई साहब ! भोजन इतना स्वादिष्ट भी हो सकता है, यह बात आज ही समझमें आई है।' महेशने मेरे पास खिसककर धीरेसे कानमें फुसफुसाते हुए कहा।

'किंतु तुम और रोटी नहीं पा सकते।' महेशको मैंने मना किया; किंतु स्वयं मेरी इच्छा थी कि यहाँ भरपेट भोजन करनेकी बात साधुने अस्वीकार करके ठीक नहीं किया। लेकिन इस तपस्वी ब्राह्मण-परिवारको भूखे भी तो नहीं रखना था। क्या पता कि उनके घर और आटा होगा भी या नहीं, क्योंकि जिस घरमें प्रत्येक सदस्यको तीन लाख नाम-जप प्रतिदिन दैनिक कार्य करते हुए भी करना ही पड़ता है, उस घरमें अधिक आटा पीस लेनेका अवकाश कैसे मिल सकता होगा। आटा तो घरके सदस्यों-का पीसा ही काममें वहाँ आता है।

'मनमें संसारसे वैराग्य कैसे हो?' भोजनके पश्चात् चलते-चलते साधुने अकस्मात् पण्डितजीसे पूछ लिया।

'मेरे एक सम्बन्धीको मिठाई बहुत प्रिय लगती थी। उन्हें मधुमेह हो गया।' पण्डितजीने बताया—'चिकि-त्सकोंने समझा दिया कि मीठी वस्तुका सर्वथा त्याग किये बिना रोग नहीं जायगा। रोग बना रहा तो फोड़े निकलने प्रारंभ होंगे। बहुत कष्ट होगा। उनकी चीनी ही नहीं, आलू-चावल आदि भी छूट गए। संसारके विषय दुःख देंगे—यह ठीक समझमें आ जाय तो वैराग्य अपने-आप हो जायगा! ऐसा न हो, तबतक विवेक-विचार तथा प्रार्थनाका ही सहारा है।'

'प्रार्थना कैसे की जाय?' महेशने पूछा।

'भगवान् पराये तो हैं नहीं कि उनसे कुछ कहनेके लिए नियम-पालन करना पड़े।' पण्डितजीने समझाया—

'वे अपने हैं। जैसे आप अपने लोगोंसे कुछ कहते हैं, उनसे कह लीजिए और जिह्वाको नाम-जपमें लगाये रहिए।'

'भाई साहब! आज सत्ययुगके एक ऋषि-परिवारका दर्शन आपने करा दिया।' प्रणाम करके उस भवनसे बाहर आते ही भरे स्वरमें महेश बोले—'सादगीका यह आदर्श धन्य है; किंतु भाई साहब! इस लक्ष्यको आदर्श मानकर केवल प्रयत्न कर सकूँ तो भी जीवनको धन्य मानूँगा। इसे अपना लेनेकी कल्पना भी अभी तो कठिन ही लगती है।'

सरलता

माता-पिताने उसका नाम तो बुधिराम रक्खा था; क्योंकि उसका जन्म बुधके दिन हुआ था; किंतु सृष्टिकर्ता-ने उसे बुद्धि देनेकी कृपा नहीं की। आस-पासके लोग उसे बुद्धू कहकर पुकारते थे और वह भी इसी शब्दको अपना नाम समझता था। अपने इस नामके सर्वथा अनुरूप ही वह था। कुशल यह थी कि गड़रियेके घरमें जन्म हुआ था। भेड़ें चरानेका काम करना था अपने जीवनमें उसे। भेड़ कितना नासमझ पशु है, यह तो आप जानते ही हैं।

मुझसे एक बार एक पशु-पालन-विद्याके जानकारने कहा—'किसी क्षेत्रकी घास गायें चर चुकी हों तो उसमें घोड़े तथा खच्चर अपना पेट भर ले सकते हैं। घोड़ोंके चरने योग्य घास न रह जाय तो भेड़ें वहाँ चरकर तृप्त होंगी। भेड़ भी न चर सकती हों, तब वहाँ बतख पक्षी चर सकते हैं।'

गाँवके बाहर दूरतक ऊसर भूमि थी। ऊसरके मध्यमें तो नहीं; किंतु कुछ एक ओर हटकर ग्रामकालिकाका पक्का चबूतरा था और एक नीमका वृक्ष था। बुद्धूकी

भेड़ोंका वह ऊसर मुख्य चरागाह था। गर्मियोंमें जब गधे उसपर चरनेको कुछ नहीं पाते थे। भेड़ें इधर-उधर मुँह चलाती ही रहती थीं।

'मैया! मैं एक झपकी ले लूँ। तुम तबतक मेरी भेड़ें ताके रहना।' बुद्धू ग्रामकालिकाको 'कालीमाई' कहता था और जब उसकी अपनी माँ यदा-कदा उसकी भेड़ें संभाल लेती है, उसे घर भेज देती है तो यह चौरेवाली माँ थोड़ी देर उसकी भेड़ें क्यों नहीं सँभाल सकती? वह सीधा-सा गँड़रिया अपनी सरल भाषामें अपनी बात कहकर वहीं चौरेसे नीचे नीमकी छायामें अपना मैला गमछा बिछाकर लेट जाया करता था। उसकी लाठी बगलमें पड़ी होती, लोटा-डोरी समीप रक्खे होते और वह डेढ़-दो घंटे मजेमें खर्राटा लेता पड़ा रहता। उसके शरीरपर चीटियाँ घूमती हैं या दूसरे कीड़े, इसका उसे कुछ पता नहीं होता। निद्रा प्रायः तब टूटती, जब वृक्षकी छाया दूसरी ओर हट जाती और उसके मुखपर धूप आ जाती। गमछा फटकारकर धूलि झाड़ दी, लाठी तथा लोटा-डोर उठा ली और भेड़ोंको सँभालनेमें लग गया।

कालीमाई बुद्धूकी भेड़ सँभाल लें। गङ्गामाईमें वह डुबकी लगा लेता है, जब भेड़ चराते गङ्गाके समीप पहुँच जाय। पीपलके नीचे जो शंकरबाबाकी पिण्डी रक्खी है, वे केवल इतने काम आते हैं कि उसके सामनेसे निकलते समय उनको हाथ जोड़कर मस्तक झुका लिया जाय। इस प्रकारके और भी अनेक देवबाबा

हैं, जैसे 'डीहबाबा' (ग्रामदेवता), 'सतीमाई' जैसी कुछ 'माई' भी हैं। किसीका चौरा है, किसीका टीला है, किसीका निवास किसी वृक्षपर ही है। बुद्धने इनमें-से किसीको देखा नहीं है, किंतु किसीके भी होनेमें उसे कोई संदेह नहीं है। वह इन सबको हाथ जोड़कर सिर झुकाता है समीपसे निकलते समय, और इनमें-से किसीको कोई काम बतानेमें उसे संकोच भी नहीं होता। कोई भेड़ खो गयी है तो ब्रह्मबाबा उसे ढूँढ़नेमें सहायता कर दें, कोई आँधीमें भटक गयी है तो सतीमाई उसे बचाये रक्खें, कुएँ-नालेमें गिरने न दें। ऐसी छोटी-मोटी प्रार्थनाएँ वह करता ही रहता है और उसे किसीसे शिकायत नहीं है कि किसीने कभी उसकी कोई प्रार्थना अनसुनी कर दी।

× × ×

'अबे ओ बुद्धूके बच्चे!' गाँवके ठाकुरसाहब क्रोधमें भरे आये हैं उसके पास। इस समय वे कुछ भी कह सकते हैं।

'मालिक! मैं बुद्धू हूँ। मेरे बापका नाम तो मंगलू है।' बुद्धू हाथ जोड़कर ऐसे सहज भावसे कह देता है, जैसे ठाकुरसाहबने उसे पहचाना नहीं हो। वह कहता ही जाता है—'मेरा तो विवाह हो नहीं हुआ मालिक! मेरे बच्चा कहाँसे आयेगा।'

'कल तू मेरे खेतमें भेड़ें क्यों नहीं लाया?' ठाकुर-साहबने डाँटकर पूछा। वे जानते है कि बुद्धूसे सिरपच्ची

करना व्यर्थ है। वह गालीको भी कम ही गाली समझ पाता है। लेकिन आषाढ़ लग गया है। धानका बीज डालनेवाले खेतमें भेड़ें न बैठायी गयीं तो केवल खादके बलपर धानका रोपा इतना नहीं बढ़ेगा कि गहरे खेतमें लगाया जा सके। कल सबेरे इसीलिए अपने-आप बुद्धूके पास आये थे और कह गये थे कि वह शामसे चार-पाँच दिन उनके खेतमें भेड़ें बैठावे।

'मालिक! मैं क्या कर सकता हूँ।' बुद्धू असहायकी भाँति हाथ जोड़े सामने खड़ा कह रहा था—'तिवारी पण्डित आये और भेड़ोंको अपने खेतमें हाँक ले गये। अब सात दिनका तो बन्धन हो गया उनके यहाँ।'

'आज शामको मैं हाँक ले जाऊँगा। बन्धन तेरा मेरे यहाँ पहलेका है। मैंने पहले कहा है तुझे।' ठाकुरको बहुत क्रोध आया। तिवारीसे उनकी कुछ कसमकस चलती है। वैसे भी जब उन्होंने कह रक्खा था, तिवारी क्यों भेड़ें हाक ले गये! इस समय यह न्यायकी बात सुनने-समझनेको उनका मन प्रस्तुत नहीं था कि केवल कहनेसे बात पक्की नहीं होती। गँड़रियों-को कुछ पैसे, गुड़-सीधा भी रात भेंड़ बैठानेके लिए पहले देना पड़ता है। ठाकुरने तो कुछ दिया नहीं था और तिवारीने जब दे दिया है, उनका काम पूरा होनेसे पहले गँड़रिया दूसरेके खेतमें भेड़ें कैसे ले जा सकता है?

'मुझे चार जूता मार लो मालिक! बुद्धूने मस्तक झुका दिया। वह नहीं चाहता है कि ठाकुर तथा

तिवारी परस्पर लड़ें, लाठियाँ चलें और फिर कचहरी दौड़ें लोग।

'तुझसे क्या मतलब है ?' ठाकुरने दहाड़ ली—'तिवारीको मैं देख लूँगा।' इधर गँड़रिये कम हैं। कुल चार-पाँच झुंड भेड़ोंके हैं आस-पासके कई गाँवोंके बीचमें। आषाढ़ लगनेसे पहले ही उनके लिए किसान दौड़-धूप करने लगते हैं।

'मालिक ! आप भले मेरे हाथ-पैर तोड़ डालो।' बुद्धू तो इस प्रकार खड़ा हो गया है, जैसे ठाकुर सचमुच उसके हाथ-पैर तोड़ने ही वाला हो—लेकिन मेरी भेड़ोंके लिए लड़ाई होगी तो मैं दिनमें ही चार गाँव दूर भेड़ हाँक ले जाऊँगा। अभी बादलका नाम तो कहीं दीखता नहीं। आठवें दिनसे आपके खेतमें भेड़ आ जायँगी।'

'आठवें दिन फिर कोई और हाँक ले गये तो ?' ठाकुरका स्वर कुछ ढीला पड़ गया।

'मालिक ! मैं क्या कर सकता हूँ। गँड़रिया तो आप सबकी सुननेको ही पैदा हुआ है।' बुद्धूने एक सरल मार्ग बतला दिया—'आप आठवें दिन सबेरे ही गुड़-सीधा दे देना। बन्धन हो जायगा तो कोई भेड़ हाँकनेकी हिम्मत नहीं करेगा।'

'अच्छी बात !' ठाकुरने समझ लिया कि भूल उनसे हुई है। लेकिन इस गँड़रियेको इतने सस्ते वे छोड़ देनेवाले नहीं थे। चलते-चलते उन्होंने दो हाथ धर नहीं दिया तो केवल इसीलिए कि अपने खेतमें भेड़ें बैठाना

आवश्यक था; किंतु धमकी देते गये—'इस बार थानेदार-को बड़ा भेड़ा देना पड़ेगा, तब पता लगेगा तुझे कि ठाकुर संग्रामसिंहसे गुड़-सोधा अगाऊ कैसे मिलता है।'

× × ×

'सरकार! मुझे कुछ कह लीजिए; पर मेरे इस भेड़े-को मत ले जाइये। मेरा झुंड सूना हो जायगा।' आज बुद्धू बहुत व्याकुल हो गया था। उसको समझमें ही नहीं आता था कि क्या करे वह। उसने कभी किसीको देव-पूजामें बलि देनेके लिए भी अपना कोई भेड़ा नहीं बेचा था, और यह भूरा तो उसके झुंडकी शोभा है। सफेद रंगका ऐंठी हुई सींगोंवाला खूब तगड़ा भेड़ा। बुद्धूको बहुत प्यारा है वह। अपने हाथसे घास तोड़कर वह इसे खिलाता, सहलाता तथा अपने साथ दौड़ाता है। आज थानेका सिपाही जुम्मन खाँ उसी भेड़ेको चौकीदारसे उठवाकर लेने आ गया है। बुद्धू गिड़गिड़ा रहा है—'सरकार आपके बाल-बच्चे होंगे। कोई उनके गलेपर छुरी फेरने लगे·······?'

'चुप·····!' तड़से थप्पड़ मारते हुए जुम्मन खाँने एक भद्दी गाली दी—'बहुत उछल-कूद करेगा तो ले जाकर बंद कर दूंगा। भेड़ा न हुआ कोई अजीज हो गया। बाल-बच्चेका नाम लेता है यह·····।' फिर गाली दी सिपाहीने।

'आप मुझे बंद कर दीजिये। जेल भेज दीजिये; किंतु इसे छोड़ दीजिये।' बुद्धू रोने लगा था। भेड़ा

चिल्ला रहा था। बड़े ही व्याकुल नेत्रोंसे अपने पालककी ओर देख रहा था। सिपाही और चौकीदारने अकस्मात् भेड़ोंके झुंडमें घुसकर उसे पकड़ लिया था। अब उसके दोनों ओरकी टाँगें एक-एक हाथमें पकड़कर चौकीदारने उसे कन्धेपर धर लिया था। आगे क्या होता है, जैसे भेड़को इसका अनुमान हो गया था। वह शरीर तो हिला नहीं सकता था पकड़ कड़ी थी, छटपटानेका भी अवसर नहीं था, केवल सिर इधर-उधर हिलाता तथा चिल्लाता था। उसके प्रत्येक शब्दसे जैसे बुद्धूका हृदय फटा जाता था।

'इसे छोड़ दूँ!' सिपाही जुम्मन खाँ क्रूरतापूर्वक हँसा—'कल थानेकी जाँच करने जो सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब आ रहे हैं, उन्हें क्या परोसा जायगा, मेरा सिर या तेरा?'

बुद्धू रोता-गिड़गिड़ाता कुछ दूर साथ गया; किंतु सिपाहीने उसे पीटकर, धमकाकर लौटनेको विवश कर दिया। रोता-कलपता वह लौट रहा था। तभी उसकी दृष्टि नीमके पेड़तले बने ग्रामकालिकाके पक्के चबूतरेपर गयी। एक बार वह चीखा—'कालीमाई!'

किंतु उस चबूतरेकी ओर बढ़ते बुद्धूके पैर अपनेआप रुक गये। वह अपने ओठोंमें ही बुदबुदाया—'बेचारी माई क्या करेगी। वह थाना-पुलिससे कैसे सलटेगी?' अनपढ़ सरल गँड़रिया—उसकी अपनी माँ भी तो पुलिसके नामसे काँपती है। थानेके दरोगाके हाथ-पैर जोड़कर घरकी एक बकरीको काँजी-हाउससे छुड़ाना था तो उसका बाप गया था। बुद्धूको यह भी पता नहीं कि काँजी-

हाउस और थानेमें अन्तर है और उसका बाप काँजी-हाउसके मुंशीके ही पास गया था।

'यह काम शंकरबाबा कर दे सकते हैं!' अपने स्वर्गीय पिताकी याद आते ही बुद्धूको पीपलके पेड़के नीचे पिण्डीके रूपमें बैठे शंकरजीकी याद आ गयी और फिर तो वह दौड़ पड़ा। वहाँ उसने पिण्डीके पास पीपलकी जड़पर अपना सिर प्रायः पटक ही दिया—'बाबा, मेरे भेड़ेको बचा दो। थानेदारको मनाकर उसे छुड़ा लाओ बाबा! सिपाही मेरी बात सुनता नहीं है। अवश्य ठाकुरने सिपाहीको भड़का दिया होगा। तुम इतनी दया करो बाबा!'

भगवान् शंकरको भी ऐसा भोला, इतना सरल प्रार्थना करनेवाला काहेको कभी मिला होगा। इतना अद्भुत काम भी उन्हें काहेको किसीने कभी बताया होगा। गँवार गँड़रियेके आँसू टपाटप उनकी लिङ्गमूर्ति-पर गिर रहे थे। इतनी निष्कपट सहज सरल अर्चाकी उपेक्षाभी वे आशुतोष कैसे कर सकते थे।

बुद्धू रोता रहा, गिड़गिड़ाता रहा और तब अकस्मात् उसे ध्यान आया कि अपनी भेड़ोंकी खोज-खबर उसने देरसे नहीं ली है। 'उसे ला दो बाबा!' फिर उसने कहा और लाठी उठाकर भेड़ोंका झुंड जहाँ छोड़ आया था उधर चल पड़ा।

× + ×

'मैंने उस गँड़रियेको पीपलके नीचे शकरजीकी मूर्तिपर आँसू टपकाते और गिड़गिड़ाकर रोते देखा है।

वह पता नहीं क्या 'थानेदार' कह रहा था—वैद्यजीने दारोगा साहबकी नाड़ी देखी और गम्भीर होकर बोले—'दुखी पुकार दीनदयालके कान बहुत शीघ्र सुन लेते हैं। आपने उसे तंग तो नहीं किया है ?'

'उसका एक भेड़ा आज पकड़ मँगाया था।' दारोगा चौंका—'अभी वापस भिजवाता हूँ। क्या पता था कि वह ऐसा चमत्कारी भगत है।'

थानेदारने सिपाही जुम्मन खाँको बुलानेको कहा तो सूचना मिली—'उसे जूड़ी चढ़ी है। पाँच-सात कम्बल ओढ़े काँप रहा है। कुछ बकने-झकने लगा है।'

'वह चौकीदार कहाँ है, जो भेड़ा लाया था ?' थानेदार अब बुरी तरह घबरा गया था। उसकी घबराहट तब और बढ़ गयी, जब पता लगा कि चौकीदार तो भेड़ा किसी प्रकार पहुँचा गया है, उसे तो रास्तेमें ही ज्वर आ गया था। इधर दशा यह थी कि थानेदारके इकलौते पुत्रकी अवस्था बिगड़ती जा रही थी। उसे हैजा हो चुका था।

'मेरी दवा यहाँ कुछ नहीं कर सकती।' वैद्यजी पुराने ढंगके श्रद्धालु मनुष्य हैं। उन्होंने दो टूक उत्तर दे दिया—'देवकोपके बीच मैं नहीं पड़ूँगा। आप किसी औरको बुलाइये।'

भेड़ा इस बार एक सिपाहीके कंधोंपर लादा गया और दारोगाजी स्वयं घोड़ेपर बैठकर उसे लौटाने चले। किंतु जब घोड़ेसे उतरकर उन्होंने 'भगतजी' कहकर

बुद्धूके पैर पकड़ लिए तो वह बेचारा घबरा गया। उससे एक शब्द भी बोला नहीं गया।

'मेरे बच्चेको बचा लीजिये!' थानेदार हाथ जोड़े प्रार्थना कर रहा था और बुद्धू गिड़गिड़ा रहा था—'मैं कोई जड़ी-बूटी नहीं जानता। वैद्यबाबाको बुलाइये।'

'वैद्यबाबा जवाब दे गये!' थानेदारने कहा—'उसे आप ही बचा सकते हैं।'

'मैं तो कुछ नहीं जानता!' अचानक बुद्धूको स्मरण आया कि शायद शंकरबाबा दवा-दारू जानते हैं। वह उठ खड़ा हुआ—'आप थाने चलो। मैं बाबासे विनती करता हूँ।'

'बाबा, तुम्हें दवा-दारू आती है क्या? बेचारे थानेदारका लड़का वीमार है। एक ही बेटा है उसके। उसे कोई जड़ी दे दो न!' बुद्धू पीपलके नीचे बैठा प्रार्थना कर रहा था, अतः थानेदारको लौटनेपर अपना पुत्र रोगहीन मिला तो आश्चर्यकी क्या बात है?

व्यवहारका आदर्श

'आप मुझे क्षमा करें ! मैं आगेसे सावधान रहूँगा।' रामसिंहने दोनों हाथ जोड़े। वैसे उनकी कोई भूल नहीं थी। गाय रातमें रस्सी तुड़ाकर भाग गयी और थोड़ा-सा खेत चर गयी। वह क्या जाने कि कौन-सा खेत किसका है। पशु कभी रस्सी तोड़ ही नहीं सकेगा, ऐसी व्यवस्था किसान कैसे कर सकता है।

'अपने पशु सम्हालकर रखना चाहिए !' गाँवका सबसे झगड़ालू आदमी है कल्पनाथ। उसके मुँहमें आता है वह बके जा रहा है। रामसिंह उसकी क्षतिपूर्ति करना चाहते हैं, इसमें भी उसे अपना अपमान जान पड़ता है।

'देखो भैया ! मैं हाथ जोड़ता हूँ, पैर पड़ता हूँ, इस समय तो चले जाओ।' रामसिंहने सशंक भावसे पीछे देखा — ललन घरपर ही है और कहीं वह बाहर आ गया···।'

'क्या कर लेगा वह और क्या कर लोगे तुम ·····।' कल्पनाथ गरज उठा ; किंतु बोलते-बोलते ही रुक गया।

'कौन है रे ? भैयाको तू-तड़ाक करने आया है तू ?' केवल लँगोट लगाये लल्लन घरके भीतरसे दौड़ता आ रहा था। उसके नेत्र लाल हो रहे थे, मुख तमक रहा था। आते ही कल्पनाथको उसने अपने हाथोंपर सिरसे ऊपर उठा लिया।

'लल्लन !' रामसिंहने पकड़ा छोटे भाईका हाथ और नेत्र कड़े किये।

'अच्छा अभी तो तुझे छोड़ देता हूँ।' लल्लनने धीरेसे कल्पनाथको नीचे खड़ा कर दिया—'चुपचाप चले जाओ ! तुमने भैयाको अटपटी बातें कही हैं, याद रखना !'

'लल्लन ! चल भीतर।' रामसिंहने हाथ पकड़ा और डांटते हुए खींचा घरकी ओर। कल्पनाथ कुछ भुनभुनाता हुआ खिसक गया था। 'तुझे यहाँ भेजा किसने ?'

'मैं दूध पीने बैठा था।' उसने कहा—'तुम्हारे भैयासे कोई झगड़ रहा है !' लल्लनके नेत्र अभी भी अंगार हो रहे थे। वह पीछे मुख घुमाकर बार-बार देख रहा था। उसके रहते कोई उसके भैयाको आधी बात कह दे ! 'देखूंगा मैं इसे।'

'किसे देखेगा ? कल्पनाथको कुछ कहा तो अच्छा नहीं होगा।' रामसिंहने डाँटा—'इतना बड़ा हो गया और बचपन जाता नहीं। दूधका ग्लास फेंक आया है, एक आदमी अपने अड़ोसी-पड़ोसीसे हिलमिलकर न रहे,

दो खरीखोटी भी सह न सके तो आदमी काहेका। सबसे लड़ते रहना कोई आदमीका काम है।'

× × ×

दो भाई हैं—सगे भाई नहीं, सौतेले भाई हैं रामसिंह और लल्लनसिंह; किंतु लोग इन्हें राम-लक्ष्मणकी जोड़ी कहते हैं। रामसिंह तब असंतुष्ट होते हैं जब लल्लन उनसे पहिले रातको उठकर खेतपर चला जाता है या गायोंका गोबर उठा डालता है सबेरे जब वे खेतपर गये होते हैं। 'जब तुझे ही घर सम्हालना है तो ले सम्हाल। मैं तीर्थ करने जाता हूँ।'

'भैया!' लल्लन बड़े भाईके सामने भीगी बिल्ली बना रहता है। गाँवका सबसे बलिष्ठ युवक, अखाड़ेके युवकोंका उस्ताद लल्लनसिंह, किंतु बड़े भाईके सामने वह जैसे छोटा बच्चा है।

'किसने कहा था तुझे यह सब करनेको?' रामसिंह के लिए लल्लन जैसे बहुत छोटा बालक है। अभी उसके खेलने-खानेके दिन हैं। वह दूध पिये और अखाड़ेकी शोभा बढ़ावे—'मैं मर तो नहीं गया। मर जाऊँगा तो सम्हालना खेत-खलिहान।'

'भैया!' रो पड़ता है लल्लनसिंह बच्चोंके समान फूट-फूटकर। अपने स्नेहमय भैयाके मुखसे कोई अशुभ बात निकले…।

'रो मत !' भैया द्रवित हो उठते हैं—'तुझे इन खटपटोंमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं है। अखाड़ेपर जानेमें देख देर हो गयी।'

रामसिंहको प्रायः यह कहते सुना जाता है—'मरते समय पिताजीने कहा था 'बेटा ! लल्लनके अब तुम्हीं पिता हो !'

बात दोनों भइयोंतक ही नहीं है। घरके भीतरका सौहार्द भी अद्‌भुत है। लल्लनकी स्त्री 'जीजी ! जीजी !' की रट लगाये रहती है दिनभर। लल्लनके लिए घरमें 'भाभी' को छोड़कर जैसे कोई है ही नहीं। उसके भोजन, कपड़े, दूध—भाभीको उसकी इतनी चिन्ता रहती है जैसे माताको छोटे बच्चेकी रहती हो।

'क्यों री ! बहुत बलवान् हो गयी है तू ? इतनी रात रहते उठ पड़ी, बीमार होना है क्या ?' भाभी भी तभी रुष्ट होती हैं जब लल्लनकी स्त्री उनसे पहिले उठकर आटा पीसने बैठ जाती है, बर्तन मल लेती है या घरमें झाड़ू लगा डालती है।

'नींद खुल गयी थी, देखा यही कर लूँ !' लल्लनकी स्त्री सेवाका कुछ न कुछ भाग झपट ही लेती है और उसके लिए 'जीजी'की डाँट भी सह लेती है। वह कह भी देती है—'तुम दिनभर काम करते-करते थक जाया करो और मैं बैठी देखती रहूँ—यह मुझसे तो नहीं होता।'

'अब तो यह नानीकी भाँति बोलने लगी है।' रामसिंहकी स्त्री रुष्ट होकर भी नहीं हो पातीं। उनकी

समझसे उनकी देवरानी अभी निरी बच्ची है। उन्हें डर लगा रहता है कि चक्की चलाने या भरा घड़ा उठानेसे उसे 'कुछ' हो जायगा। लेकिन जब वे रुष्ट होती हैं—बहुत रुष्ट होना चाहती हैं तो वह धब्से उनकी गोदमें ही आ बैठती है और कहने लगती है—'जीजी! ले थप्पड़ मार दे।' ऐसी बच्चीपर कोई रुष्ट हो कैसे सकता है?

× × ×

'लल्लनने धोबीको पूरा एक बोझ दे दिया चनेका। खेत कट रहा है, वहाँ केवल खड़े रहनेका काम है। रामसिंहके लिए ऐसे कामोंके देखने-करनेका पात्र लल्लन ही है। जहाँ थोड़ा भी श्रम पड़ता हो, वे स्वयं वहाँ जाना चाहते हैं। आज उनसे गाँवके एक पड़ोसीने बड़ी हितैषिता दिखायी—'इस प्रकार लुटाना अच्छा नहीं। लल्लन अभी समझता नहीं।'

'लल्लन! तू कंजूस हो गया है?' सन्ध्या समय रामसिंहने छोटे भाईको हँसते हुए उलाहना दिया—'ये बेचारे नाई-धोबी-लुहार—ये वर्षभर सेवा करते हैं। इन्हें हम देते क्या हैं? फसलपर ही इनकी आशा रहती है। खेत-खलिहानके समय भी इन्हें न दिया जाय तो इनके बाल-बच्चे कहाँ जायँगे। इनको कम-से-कम इतना तो देना चाहिए कि इनका जी न दुखे। धोबी, नाई जो आवे उससे कह दिया कर कि वह जितना एक बारमें ले जा सके, बाँध ले।'

लेकिन भैयाका यह स्नेह दूसरे ही दिन दूसरे रूपमें प्रकट हुआ। वे खेतसे लौटे तो किसीने कुछ कह दिया मार्गमें। बात साधारण-सी थी, लल्लनने तनिक हँसीकी थी पानी भरनेवाली कहाँरिनसे। कहनेवालेने भी विनोदमें ही कहा था; किंतु भैयाने चारेका भार द्वारपर फेंका और वैसे ही चल पड़े अखाड़ेकी ओर।

लल्लन अखाड़ेमें जोर करा चुका था। वह बैठ गया था एक ओर। कई युवक उसके कंधे, हाथ और पैर मल रहे थे। पूरा शरीर धूलि एवं पसीनेसे लथपथ हो रहा था।

'अब तेरे पंख जमने लगे हैं!' भैया तमतमाये आये और उन्होंने तड़ातड़ पाँच-सात थप्पड़ धर दिये लल्लनके मुखपर। वहाँ खड़े युवक देखते रह गये। कोई दूसरा होता तो···लेकिन भैयाका कोई क्या कर सकता था। लल्लनने चूँ नहीं की। उसे हाथ पकड़कर भैया घसीटते हुए घर ले चले—'गाँवकी बहू-बेटियोंपर तू अब आवाजें कसने लगा है। घर चल तो दिखाता हूँ।'

'तुमने मारा है?' घर पहुँचनेपर तो भाभी दौड़ आयीं आगे। उन्होंने रामसिंहका हाथ झटक दिया—'अपने छोटे भाईपर हाथ उठाते लज्जा नहीं आयी तुम्हें?' पतिपर वे पहिली बार असन्तुष्ट हुई थीं।

'इससे पूछ कि क्या कर आया है यह।' रामसिंहने भाईका हाथ छोड़ दिया था। उनका रोष ठण्ढा पड़ने लगा था।

'ऐसा क्या अनर्थ किया होगा !' भाभीने स्नेहपूर्वक पुचकारा—'तुम भीतर चलो। ये अब सठिया गये हैं।'

'भैया ! तुम मुझे खूब पीटो।' सहसा भाभीका हाथ छुड़ाकर लल्लन भैयाके पैरोंपर गिर पड़ा। वह फूट-फूटकर रो रहा था—'भैया ! मुझे पीटो चाहे जितना, किंतु मुझसे रूठो मत। अब मुझसे ऐसी भूल नहीं होगी।'

'अच्छा उठ !' भैयाने उठा लिया छोटे भाईको। वे उसका मुख पोंछ रहे थे अपने गमछेसे—'भगवान्‌ने बल दिया हो तो झुककर चलना चाहिए। सदाचारको कठोरतासे निभाना चाहिए। औरोंसे तुम्हें अधिक सावधान और संयमी रहना है, यह भूलो मत।'

× × ×

'आप नहीं सम्हालें तो मेरी लज्जा नहीं रहेगी !' कल्पनाथ गाँवमें सबसे झगड़ालू है। कोई नहीं जिससे उसकी खटपट न हुई हो। मिलकर चलना उसने सीखा नहीं। कोई उसके हितैषी नहीं। कोई उसका सहायक नहीं। अब उसकी कन्याका विवाह है। बारात आनेवाली है; किंतु उसे सहयोग नहीं मिल रहा है। वह सीधे राम-सिंहके यहाँ आया और उनके पैरोंकी ओर झुका।

'तुम यह क्या करते हो ?' रामसिंहने उसे पैर छूनेसे रोक लिया। 'तुम्हारी पुत्री मेरी पुत्री नहीं है क्या ? घर चलो, मैं अभी आ रहा हूँ।'

पूरी व्यवस्थाका भार उठा लिया रामसिंहने। लल्लन और उसके अखाड़ेके युवक दिन-रात करके दौड़-धूप कर रहे थे। इतनी उत्तम व्यवस्था—परंतु जहाँ व्यवस्था करनेवालेके प्राण एकाकार हो रहे हों, वहाँ त्रुटि सम्भव कैसे है।

'डाकू! डाकू आये हैं!' विघ्न भी किस बुरे मुहूर्तमें आते हैं! कल्पनाथके आँगनमें पूरा ग्राम एकत्र था। कन्याके पाणि-ग्रहणका उपक्रम हो चुका था और किसी बच्चेने दौड़ते-हाँफते आकर समाचार दिया—'गाँवके सबसे सम्पन्न व्यापारीका घर डाकुओंने घेर लिया है।'

'उस बेचारेके घर कोई नहीं। वे दोनों भाई रोगी हैं और घरके भीतर दोनोंकी स्त्रियाँ हैं, कन्या है। नौकर तो आ गये हैं यहाँ विवाहमें!' लोगोंमें बेचैनी और फुसफुसाहट प्रारंभ हुई। पर डाकुओंके सामने जानेका साहस कौन दिखावे।

'लल्लन! तुम आगे जाओ और डाकुओंको रोको।' रामसिंहने इधर-उधर देखकर छोटे भाईको मण्डपमें देख लिया—'विवाहकार्य चलता रहेगा। फेरे पड़े और मैं भी आया।'

लल्लन निकला शीघ्रतापूर्वक और उसे जाते देख कई युवक उसके साथ हो गये। लाठियाँ सम्हालीं सबने और डाकुओंको जा ललकारा।

'मरना न हो तो वहीं खड़े रहो।' डाकुओंने भी सामना कर लिया। उनकी संख्या पर्याप्त अधिक थी।

केवल लँगोट लगाये, पूरे शरीरमें तेल पोते, हाथोंमें लाठियाँ, बल्लम, गँड़ासे लिये वे भी मार्ग रोककर खड़े हो गये थे।

'पत्थर चलाना है।' लल्लनको ठीक समय उपाय सूझ गया। युवकोंने ईंट, मिट्टीके डले, खपरैल—जो हाथमे आया, फेंकना प्रारंभ किया। परंतु डाकुओंका दल विचलित नहीं हुआ। वे केवल आड़में हो गये। उनके जो साथी घरके भीतर घुस चुके थे, वे अपना काम कर रहे थे। बाहरवालोंको तो केवल इन लोगोंको रोके रखना था।

'भैया!' पता नहीं कितनी देर बीती, भैया दिखायी पड़े लल्लनको। वे दौड़ते आये थे और सीधे लाठी उठाये डाकुओंके समीप पहुँच गये थे। एक डाकूकी लाठी पड़ी उनपर—पता नहीं उनपर या उनकी लाठीपर; किंतु लल्लनके साथका एक युवक चिल्ला उठा—'भैयाको लाठी लगी।'

'भैयाको लाठी लगी!' लल्लनके नेत्रोंमें रक्त उतर आया। वह लाठी उठाये टूट पड़ा। टूट पड़े उसके साथ-के युवक और जब कोई प्राणोंका मोह छोड़कर आगे बढ़ता है—सौको भी वह अकेला भारी पड़ता है।

डाकुओंमें-से कुछ गिरे, कुछ भागे। गाँवके और बारातके लोग भी आ गये थे। जो डाकू पकड़े गये, प्रायः बुरी तरह वे घायल थे। लेकिन लल्लनको पकड़ना सबसे कठिन था। वह अंधाधुन्ध लाठियाँ चलाये जा रहा

था। जब उसे रोक लिया गया, भूमिपर गिर पड़ा वह।

'भैया!' लल्लनके मुखमें एक ही शब्द था। उसके सिरसे रक्त चल रहा था। भुजाओं और कंधोंपर लाठियाँ लगी थीं। एक भुजापर भालेने बड़ा-सा घाव कर दिया था।

'लल्लन!' भैया उसका मस्तक गोदमें लिये वहीं भूमिपर बैठे थे। उन्हें आज अपने छोटे भाईपर गर्व था— 'तुमने मेरा स्नेह सफल कर दिया।'

लल्लनके लिए उपचारकी चिन्ता करनेवाला तो आज पूरा गाँव हो गया था। स्त्रियाँ कह रही थीं—'परायेकी आगमें भाईको ठेल देनेवाला भाई धन्य है! रामसिंहने आज गाँवकी लाज बचा ली।'

—०—

समाजकी सेवा

[१]

वे विद्यापीठके स्नातक हैं विद्यापीठकी शिक्षाकी सफलता ही है समाज-सेवामें। देश-सेवाकी प्रबल प्रेरणाने ही इस संस्थाकी नींव रक्खी और देशके स्वधीनता-संग्राममें इसके शिक्षकों एवं छात्रोंने कितना बलिदान किया, यह तो देश भली प्रकार जानता ही है। वे उस गौरवमयी संस्थाके स्नातक हैं। देश-सेवा उनका स्वभावगत गुण होना ही चाहिए।

दुबला-पतला साँवला शरीर, हँसता-सा गोल मुख, घुंघराले सँवारे केश, नेत्रोंपर चश्मा, कलाईमें बँधी घड़ी, पैरोंमें चप्पल—दूध-सी उजली सफ़ेद खादी तो समाज-सेवकका पवित्र वस्त्र है। आप उन्हें एक बार देख लें तो सहज ही भूल नहीं सकते। बड़ा मिलनसार स्वभाव है। बड़ी विलक्षण प्रतिभा है। वक्तृत्व-शक्तिकी तो पूछिये ही मत। जिसमें वक्ता बननेकी योग्यता नहीं होगी, वह समाजकी सेवा कैसे करेगा। वे तो साधारण बातचीतमें भी चुटकियाँ लेते, उपदेश देते, व्याख्यान-से ही देते चलते हैं।

बलिदान —देशके लिए बलिदानकी पुकार गूँजती थी उनके कानोंमें । आज नहीं गूँजती सो मैं नहीं कहता; किंतु उस समय युग ही दूसरा था । लाठी, गोली, जेल— विदेशी सरकार अपनी पूरी शक्तिसे दमनपर उतर आयी थी । देशने चुनौती स्वीकार करली थी । वे उस समय एक पूरे जिलेके आन्दोलनका नेतृत्व कर रहे थे । पूरे तीन बार उन्हें जेल जाना पड़ा । कोई ऐसी कठिनाई नहीं, जिसे उन्होंने न उठाया हो ।

आजकी बात अब दूसरी है । आज वे चाहते तो किसी उच्च पदपर होते । मित्रोंने उनसे चुनावमें खड़े होनेका आग्रह भी किया था और सफलता तो निश्चित ही थी । वे प्रारम्भसे विचित्र स्वभावके रहे हैं । मित्रों को उन्होंने दो टूक उत्तर दे दिया—'मैं शासक नहीं, सेवक रहा हूँ । सेवक ही रहना चाहता हूँ ।'

'वहाँ आप अधिक सेवा कर सकेंगे ।' यह तर्क भी आया था । इसकी उपयोगिता और महत्ता वे न समझते हों, ऐसा नहीं है; किंतु उनका निश्चय कभी ढीला नहीं पड़ा करता । उनका दृष्टिकोण भी महत्त्वपूर्ण है—'जनताको अधिकारियोंसे भी अधिक उस सेवककी अपेक्षा है जो उसके बीच रहकर उसकी सेवा करे '

'जनताके बीच रहकर जनताकी सेवा ।' यहाँसे वहाँ दौरा करने और व्याख्यान देनेको ही तो जन-सेवा कहा जाता है । समाजकी सेवाका दूसरा क्या रूप हो सकता है ? यह रूप आवश्यक नहीं है, महत्त्वपूर्ण नहीं है, यह कहेगा भी कौन ।

'जनताको, देशको आज नेता नहीं, अच्छे नागरिक चाहिए।' उन्होंने स्वयं भी अपने सम्मान्य नेताकी इस पुकारको कई बार दुहराया है। आज ही क्यों उनके मनमें यह आ रहा है—'तू भी तो नेता है ?'

'आपलोग सेवक हैं या नेता ?' एकने एक दिन पूछा था उनसे। 'यह सेवकका वेश है ? आप क्या सोचते हैं कि व्याख्यान देते घूमनेसे समाजकी सेवा हो जाती है ?'

हमारी सेवा साधारण घरेलू सेवकसे दूसरे प्रकारकी है ?' उस दिन उन्होंने हँसकर उत्तर दे दिया था—'हम स्वच्छता, सावधानी, अनुशासन, विद्याका प्रचार करते हैं। स्वयं हम इन्हें न रक्खें तो लोग सीखेंगे कैसे। हम जनताके विचारोंको जाग्रत् एवं परिमार्जित करते हैं। ठीक दिशा दिखाना श्रौर उधर चलनेकी प्रेरणा देना हमारा काम है। यही हमारी सेवा है। जन-जागरणसे अधिक महत्त्वकी समाज-सेवा और क्या होगी ?'

कोई उनसे बहस करके कहाँ पार पा सकता है। लोगोंके अटपटे तर्कोंका उत्तर देना तो उनकी सेवाका एक मुख्य अङ्ग ही है। लेकिन बूढ़े महात्माजीने जो आत्मनिरीक्षण, आत्मशोधनकी प्रबल प्रेरणा दी थी—किसी दूसरेने उसे कितना ग्रहण किया, यह कहना तो कठिन है; किंतु उन्होंने उसे बड़ी गम्भीरतासे ग्रहण किया था। वह प्रेरणा ही उन्हें राजनीतिक क्षेत्रमें ले आयी थी, यह कहना कुछ असंगत नहीं होगा। समाज-सेवाको उन्होंने एक साधन माना था आत्मशुद्धिका। वे

देश-सेवा—जनता-जनार्दनकी सेवा करने आये थे। वह आत्मशोधनकी प्रेरणा उनके भीतर कभी मन्द भले पड़ी हो, प्रसुप्त नहीं हुई और आज पता नहीं क्यों यह जग पड़ी है।

'व्याख्यान देनेसे ही समाजका कल्याण हो जायगा ? यही समाज-सेवा है ?' एक दिन ऐसे प्रश्नोंका वे हँसकर उत्तर देते थे। आज जब कोई प्रश्नकर्ता नहीं है, आज जब सर्वत्र उनके स्वागतमें भीड़ जयध्वनि करती, मालाएँ सजाये खड़ी रहती है, यह प्रश्न उनके मनमें प्रबल क्यों होता जा रहा है ? उनके भीतर बैठकर कौन उनसे इतने तीखे स्वरमें बार-बार पूछता है, इसका कोई समाधान वे कर नहीं पाते।

'हम स्वच्छता, सावधानी, अनुशासनका प्रचार करते हैं। हम स्वयं इन्हें न रक्खें तो लोग सीखेंगे कैसे।' आज उनका यह स्वयंका उत्तर जैसे उनके मस्तिष्कमें धधककर जल उठा है।

'कितनोंने हमारे व्याख्यानोंसे स्वच्छताकी शिक्षा ली ? कितनोंने सावधानी सीखी ? कितनोंने अनुशासनका पालन करना अपनाया ?' निराशासे सिर झुक गया उनका।

'स्वयंसेवक मेरे-जैसे बाल रखते हैं। मेरे समान नंगे सिर रहते हैं। यही चप्पल पहिनते हैं। यह घड़ी न सही—घड़ी बाँधते हैं।' उन्होंने कभी इस बातपर गर्व किया था कि लोग रहन सहनमें उनका अनुकरण करने

लगे हैं। उनके-जैसी धोती पहिनना, वैसा ही कुरता बनवाना, कूर्तेके ऊपरका बटन उन्हींके समान खुला रखना—अब तो ग्रामोंके साधारण लोग भी कुछ बातोंमें उनका अनुकरण करते हैं।

'उनमें अनेक त्रुटियाँ हैं। वे बोलने मैं कुछ गर्दन एक ओर झुकाकर बोलते हैं, चलनेमें हाथ अधिक हिलाते हैं। हाथ धोनेमें..........रहने दीजिये त्रुटियोंकी बात। त्रुटियाँ किसमें नहीं होतीं; किंतु यह है क्या? उनकी त्रुटियाँ इतनी व्यापक क्यों होती जा रही हैं? लोग त्रुटियोंमें उनकी ठीक-ठीक क्यों नकल करते हैं?

'मैं क्या कर रहा हूँ? मुझसे समाजकी कौन-सी सेवा हो रही है?' वे सिर पकड़कर बैठ गये हैं। आज 'उनके उपदेशों, व्याख्यानोंका क्या प्रभाव? उन्होंने समाजको दोष—अपने दोष ही तो बाँटे। लोगोंने उनके दोष-ही-दोष लिये!'

व्यापक—व्यापक होते जा रहे हैं उनके दोष। जैसे सम्पूर्ण दिशाएँ, पूरा आकाश मैला घिनौना होता जा रहा उनके दोषोंसे। उन्होंने नेत्रोंपर हाथ रख लिये। कोई वज्र-कर्कश स्वरमें पूछ रहा है उनसे—'तू समाजका सेवक हैं? समाजकी सेवाकी है तूने? यही है तेरी समाज-सेवा?

क्या उत्तर है उनके पास। उनके नेत्र आज इस एकान्तमें टपाटप बूंद गिराते जा रहे हैं।

× × ×

[२]

वह भी विद्यापीठका स्नातक है। बूढ़े महात्माजीकी वाणीपर उसकी निष्ठा विद्यापीठमें प्रवेश करनेसे बहुत पहलेसे रही है। महात्माजीकी अहिंसा और आत्मशोधनकी प्रेरणाने उसे भी बहुत आकर्षित किया। आत्मशुद्धिकी धुन उसकी बहुत पुरानी है।

दुबला-पतला कुछ ललाई लिये गेंहुआँ गोरा शरीर, गम्भीर गोल मुख, घुटा सिर, बड़ी सी चुटिया, नंगे बिवाई भरे पैर, खादीका मटमैला कुर्ता, खूब मोटी कुछ मैली धोती—उसे विद्यापीठमें उसके सहपाठी, सदा चिढ़ाते रहे हैं। अर्थशास्त्र और राजनीतिके बदले वह दर्शनशास्त्र और संस्कृतका छात्र था। चमड़ेकी चप्पलके स्थानपर लकड़ीकी चट्टियाँ पहनता था। उसकी चुटिया और जनेऊका बड़ा उपहास हुआ। लेकिन बड़ा गम्भीर है वह। बहुत कम हँसता है। जब धीरेसे तनिक-सा हँसता है—जैसे मोती बिखरे पड़े हों। उसकी गम्भीरता ऐसी है कि उसका उपहास करके उपहास करनेवाला ही संकुचित हो उठता है। वह पूरे विद्यापीठ-जीवनमें वैसा-का-वैसा ही रहा आया था। उसकी एक मण्डली बन गयी थी धीरे-धीरे। यह उसीकी गम्भीरताका प्रभाव था कि विद्यपीठमें भी कुछ दिन कुछ छात्र बड़ी चुटिया रखने और संध्या करने लगे थे।

समाजकी सेवा आत्मशुद्धिका साधन है, यह बात उसे कुछ ठीक-ठीक जमी नहीं। लेकिन महात्माजीने देश-सेवा,

समाज-सेवाकी प्रेरणा दी, वह प्रेरणा उसके हृदयमें भी बस गयी थी। लेकिन वह वक्ता नहीं है। वह तो साधारण बातचीतमें भी शब्दोंको इतना तौल-तौलकर मुखसे निकालता है, जैसे कोई बहुत बड़ी सम्पत्ति व्यय कर रहा हो। दस शब्दका चारमें चल सके तो वह साढ़े चार बोलनेवाला नहीं। जो वक्ता नहीं, वह भला नेता कैसे होगा। ग्रौर जो नेता नहीं, पुलिस उसके पीछे कभी क्यों पड़ेगी। देशके इतने महान् संघर्षमें भी उसकी बात किसीने नहीं पूछी। वह जेल नहीं गया, उसे किसीने एक धक्कातक नहीं दिया। आज जब चारों ग्रोर धूम है, ग्राज भी उसे कोई पूछनेवाला नहीं। वह कभी नेता तो था ही नहीं।

विद्यापीठसे वह अपने घर चला आया। घरपर खेती-के काममें जुट गया। वह कुट्टी काटता है, घास छीलता है, खेतमें खाद अपने सिरपर उठाकर ले जाता है। विद्या-पीठका स्नातक है वह, यह तो जाननेवाले जानते हैं। एक उद्योगी किसान है वह, यह देखते ही समझा जा सकता है।

दोपहर-विश्रामके समय वह चर्खा चलाता है। घरमें उसने चर्खे लाकर रख दिये हैं। अपने खेतमें उसने थोड़ी रूई बोना प्रारम्भ कर लिया है। रूईमें अच्छी आमदनी है। घरमें चर्खे चलें तो बाजारसे कपड़े नहीं लेने पड़ते। पड़ोसियोंने यह झटपट अनुभव कर लिया है। उसके गाँवके किसान अब रूई बोने लगे हैं। उसे ग्रब एक घंटे रोज उन लोगोंको चर्खा चलाना सिखाना पड़ता है, जो उसके पास बड़े आग्रहसे सीखने ग्राते हैं।

कभी-कभी वह आस-पासकी गलियाँ झाड़ देता है। गाँवमें लोग पता नहीं क्यों उसका सम्मान करने लगे हैं। सम्भवतः इसलिए कि नित्य सायंकाल वह पीपलके नीचे बैठकर लोगोंको रामायण सुनाता है। लोगोंको कहता है—'तुम अपने आप पढ़ो तो कितना आनन्द आये। यह तो रामजीकी कथा है।' बड़े-बूढ़े भी अब उससे क, ख पढ़ते हैं। भोजनके बाद रात्रिमें उसकी पाठशाला लगती है। अब लोग इधर-उधर कूड़ा डालते डरने लगे हैं—'पाँड़ेजी यहाँ कूड़ा देखेंगे तो झाड़ू लेकर जुट पड़ेंगे' उसका पूरा गाँव सदा स्वच्छ रहता है।

वह सबेरे एक मील जाकर गङ्गा-स्नान करता है। संध्या करता है। गीताका पाठ करता है। गाँवके युबक और बालक तो क्या, तरुण और वृद्ध भी इस प्रयत्नमें रहते हैं कि पाँड़ेजी कहीं स्नान करने पहले न निकल जायँ। 'देखा-देखी पाप देखा-देखी पुण्य' सो गाँवमें तो जैसे अब सभी गङ्गा-स्नान, संध्या, पूजा करनेवाले हो गये हैं। जो गीता-पाठ नहीं कर सकते वे रामायण या हनुमानचालीसा ही लेकर शंकरजीको सुना आते हैं। स्त्रियोंकी चर्चा मत कीजिये, उनमें तो पहलेसे सृष्टिकर्ता-ने श्रद्धा बाँटते समय बड़ा भाग दे रक्खा है। अब तो गाँवके हलवाहेतक पहले स्नान करके सूर्य भगवान्को एक लोटा जल चढ़ाते हैं और तब मुँहमें दाना डालते हैं।

जहाँ चार बर्तन होते हैं, वहाँ खनकते भी हैं। गाँवमें झगड़े भी होते हैं। कचहरीकी बात बहुत दूर चली गयी।

पाँड़ेजीके पास भी बहुत कम झगड़े आते हैं। बहुतसे झगड़ोंका निपटारा तो इतनेमें हो जाता है—'चल, पाँड़ेजीके पास चलता हूँ।'

'भैया रहने दो! अब पाँड़ेजीके यहाँ ले जाकर क्यों लज्जित करते हो। तुम्हीं जो कहो सो कर दूँ।'

क्यों पाँड़ेजीका गाँवमें इतना भय, इतना सम्मान, इतनी पूछ है, पाँड़ेजी भी नहीं जानते। वे न नेता हैं, न वक्ता। वे तो बोलनेमें भी शब्दकी कृपणता करते हैं। उन्हें अपने घरके काम, अपनी पूजा-पाठसे अवकाश ही नहीं कि समाजकी सेवा करें। यह रामायण सुनाना, लोगोंको दो अक्षर पढ़ा देना, किसीके झगड़े निपटा देना—यह तो मनुष्यका कर्तव्य है। मनुष्य अपने पड़ोसी-की सहायता नहीं करेगा तो क्या पशु आयेगा उसकी सहायता करने?

× × ×

[३]

'कितने स्वयंसेवक हैं आपके यहाँ?' उन्होंने पूछा। आज इधर आनेपर उन्हें अपने विद्यापीठके सहपाठीका स्मरण हो आया था। वे मिलने चले आये थे। यह गाँव, यहाँकी स्वच्छता, यहाँके लोगोंकी तत्परता देखकर वे चकित रह गये थे। पूरा गाँव उनके स्वागतमें जैसे खड़ा था। लेकिन वे यह जानते हैं कि उनके आनेका किसीको पता नहीं था। उनका आना सहसा हुआ है। उनके

स्वागतके लिए यहाँ कोई तैयारी हुई हो, ऐसा सम्भव नहीं है।

'हम सभी स्वयंसेवक ही हैं।' पाँड़ेजीने छोटा-सा उत्तर दिया। 'मेरा मतलब ऐसे स्वयंसेवकोंसे है, जो बराबर यहीं रहते हों। आश्रमका काम करते हों।' उन्होंने फिर पूछा।

'ऐसा तो यहाँ कोई नहीं है।' पाँड़ेजी इतना कहकर चुप हो जानेवाले थे; किंतु उन्होंने देखा कि उनकी बात इस प्रकार समझी नहीं जा सकेगी। उन्होंने स्पष्ट किया—'यह आश्रम नहीं है, यह तो एक सज्जनने अपना खाली मकान पूरे गाँवको दे दिया है। अब आस-पासके गाँवके लोग भी चर्खा चलाना सीखने आने लगे हैं। कुछ लोग पढ़ने भी आते हैं। यहाँ यह सुविधा है कि चर्खे रख दिये गये हैं। हममें-से जिसे अवकाश मिलता है यहीं आकर बैठता है। अपना सूत भी कातता है, सीखनेवालों-को सिखाता भी है। वैसे तो यह हमारी रात्रिपाठशाला, पंचायत, अतिथिशाला और जो भी सामूहिक काम आ पड़े—सबका स्थान है। हम सब अपने-अपने घरका काम करते हैं और घड़ी-दो-घड़ी यहाँ भी आकर बैठते हैं। गाँवका काम तो एक दूसरेकी सहायतासे सदासे ही चलता आया है।'

'कोई स्वयंसेवक नहीं, कोई नेता नहीं।' एक बार उन्होंने चारों ओर देखा। अपने मनमें हो वे कह रहे थे—'बापूकी बातका मर्म तो पाँड़ेने समझा, लगता है।

इतना स्वच्छ, इतना अनुशासित, इतना व्यवस्थित ग्राम तो मैं अबतक दूसरा नहीं देख सका हूँ।'

'यहाँके लोग आपकी ही नकल करते हैं?' थोड़ी देर पीछे उन्होंने बात चलते हुए पूछ लिया था। वैसे उनका मन कहता था—'पाँड़ेकी नकल पूरा देश करने लग जाय तो बापूका स्वप्न आज ही सत्य हो जाय।'

'नहीं तो!' पाँड़ेने सिर हिला दिया। 'अच्छे काम लोग समझकर करें, यह कुछ नकल नहीं है। मेरी नकल भी कुछ होती है; पर बहुत थोड़ी। एकाध लोग ही मेरी भाँति घुटे-सिर रहते हैं। दो-चार ही मेरी भाँति गुमसुम बने रहते हैं।'

पाँड़े क्या उत्तर देते हैं इसके बदले उनका ध्यान लोगों-की ओर अधिक था। उनके नेत्र चारों ओर घूम रहे थे। जहाँ पहुँचना, वहाँ की अधिक-से-अधिक परिस्थितिको समझ लेनेके वे पुरानी अभ्यासी हैं। उनके नेत्रोंको छोटी-छोटी बातोंके निरीक्षणका अभ्यास है। लेकिन यहाँ उन्हें आश्चर्य हो रहा है—कोई 'पाँड़ेकी त्रुटियोंकी नकल करता उन्हें नहीं लगता। पाँड़े चलने में आगे झुककर चलते हैं, उनके कुर्तेकी दो-एक बटन टूटी ही रहती हैं, बोलते समय वे प्रायः अपने बायें हाथकी अंगुलियाँ समेटकर मुट्ठी बना लेते हैं। लेकिन दूसरोंमें उन्हें तो कोई नहीं दीखता, जिसमें ये बातें आयी हों। लोग पाँड़ेको कितना सम्मान देते हैं, यह तो वे देख रहे हैं; परंतु उनकी त्रुटियाँ व्यापक

नहीं हुई, इसका कारण ? यह कारण उनकी समझमें आ नहीं रहा है ।'

'यहाँ और भी कुछ देखने योग्य है ?' गाँव तो पांड़ेने उन्हें दिखा ही दिया है । दो दिन यहाँ रहनेकी उनकी इच्छा है । दिनभर कोई बैठे-बैठे ऊब जाय और घूमना-फिरना चाहे, यह बहुत स्वाभाविक है ।

'एक मन्दिर है ; किंतु दर्शन करनेका आपमें उत्साह नहीं होगा, यह जानता हूँ । गाँवका साधारण-सा मंदिर है ।' पाँड़ेजीने कुछ सोचकर कहा—'थोड़ी दूर गङ्गा-किनारे एक अच्छे संतकी कुटी है ।'

'संध्या-समय टहलना भी हो जायगा गङ्गा-किनारे और संतके दर्शन भी !' एक समाजसेवी विख्यात पुरुषमें साधुके दर्शनकी इच्छा होगी, यह पाँड़ेको अद्भुत लगा । गाँववालोंको इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं जान पड़ी । वे ऐसे वातावरणमें रहते हैं कि वहाँ साधुके दर्शनकी इच्छा न होना ही आश्चर्यकी बात मानी जाती है ।

× × ×

[४]

'वह गैयाका गोबर उठा तो लाओ ! एक अंजली तो होगा ही ।' भारतके साधु ऐसे बेढंगे होते हैं कि बात मत पूछिये । न जान न पहिचान, एक दूध-सी उजली खादी पहिने कोई भला आदमी दर्शन करने आया तो उसे प्रणाम करके बैठते-बैठते गोबर उठा लानेकी आज्ञा दे दी गयी !

'आप बैठिये !' पाँड़ेने उन्हें रोका और स्वयं उठने लगे। 'उन्हें ही जाने दो भाई ! वह तो गायका पवित्र गोबर है !' साधु महाराजने पांड़ेको रोक दिया।

'हमें स्वच्छता करने और कूड़ा उठानेका अभ्यास है।' वे हँसकर उठे। इतने ग्रामीण लोगोंके सामने साधुकी बात न मानना उचित नहीं जान पड़ा। गायका गीला गोबर था। कुर्तेको ऊपर चढ़ाकर किसी प्रकार उठा लिया उन्होंने उसे। हाथकी अंजली कपड़ेसे दूर किये, बहुत सम्हलते हुए चले आये किसी प्रकार। भले उन्होंने ग्रामोंकी सफाईमें थोड़ा-बहुत भाग लिया हो, भलेटोकरी भरते और उठाते समयके उनके चित्र समाचारपत्रोंने छापे हों ; किंतु उनकी एक-एक अङ्गभंगी कह रही थी—'कितना गंदा कितना उलझनभरा काम है यह।'

'यही रख दो ! साधुने कह दिया। उन्होंने गोबर गिरा दिया ; किंतु उनकी हथेलियाँ भर गयीं। वे हाथ धोना चाहते थे। इसी समय दूसरी आज्ञा मिली—'वह पुस्तक उठा लाओ और तनिक पोंछ दो उसे।'

'मैं हाथ धो लूँ।' उन्होंने देख लिया था कि पाँड़ेजी कुएँसे पानी ले आ रहे हैं।

'हाथ पीछे धो लेना।' साधुने कहा—'पहले पुस्तक साफ करके दे दो।'

'महाराज ! पुस्तकमें गोबर लग जायगा। वह एक-दम गंदो हो जायगो।' उन्हें लगा कि साधु बूटी छानते होंगे।

'एक छोटी-सी पुस्तक उठाने और स्वच्छ करनेमें तो तुम पहले अपने हाथकी ओर देखते हो और इतने बड़े समाजके दोषको दूर करने चलते हो, समाजसेवामें लगते हो तो अपनी ओर देखते ही नहीं हो।' साधुने गम्भीरतासे कहा—'तुम्हारे हाथमें गोबर लगा है तो जिन-जिन पुस्तकोंको तुम छूओगे, वे मैली होती जायँगी। तुम्हारे भीतर बुराई हो तो तुम समाजमें अपना क्षेत्र जितना बढ़ाओगे, उसमें उतनी ही बुराई फैलाते चलोगे।'

वे उस दिन साधुके पाससे गाँवमें आये और गाँवसे भी लौट आये हैं; किंतु उनके कानोंमें साधुके शब्द अब गूँजते हैं—'पहले अपने दोष दूर करो, तब समाजके दोष दूर करने चलो। जो निर्दोष नहीं, वह समाज-सेवा करने जाकर समाजका अहित ही करेगा। समाजमें अपनी बुराइयाँ बाँटेगा।'

मित्र कहते हैं—'उन्होंने अपना मान खो दिया। लेकिन अब उनसे व्यख्यान नहीं दिये जाते। अब तो वे अपने भीतर देखनेमें लगे हैं आजकल। वे समाजकी सेवामें अभी ही ठीक लग पाये हैं' यह बात क्या ठीक नहीं हैं?

जीवित मानव

मैं पहलेकी बात कह रहा हूँ—बहुत पहलेकी। उस समयकी जब संसारमें आज-जैसे दो पैरके कीड़ोंकी भर-मार नहीं थी। जब ये मशीनोंके लौह-दानव दुर्बल शरीरोंका रक्तपान कर गर्व-गर्जन नहीं करते थे। जब बाह्य चाकचिक्यमें अन्तरके नरकको अन्तर्हित किये प्रासादपूर्ण नगर धराका भार नहीं बढ़ाते थे। जब स्वार्थ एवं विलासके पैरोंके नीचे मानवता कुचली नहीं गयी थी।

मैं उस स्वर्णिम पूर्वकी बात कहता हूँ, जब हरित-भरित शस्यश्यामला पृथ्वीदेवी पुष्पित-फलित विटपों एवं लताकुंजोंसे परिपूर्ण थी। जब जहाँ-तहाँ कल-कल करती सरिता या झरनोंके समीप फूस अथवा मृत्तिकाकी कुटीरें ही मानवके लिए पर्याप्त थीं। कहीं-कहीं दस-पाँच एकत्र कुटीरें भी थीं। आप चाहें तो उन्हें ग्राम कह सकते हैं। उनमें रहते थे मानव—जंगलके फल-मूल और कहीं-कहीं जंगली पशुओंके मांसपर निर्भर रहनेवाले मानव। पशु-पालन उन्होंने सीख लिया था और यत्र-तत्र हाथसे पृथ्वी खोदकर बीज डालनेकी प्रथा भी प्रारंभ हो गयी थी। ऐसे ही एक ग्रामकी मैं बात कह रहा हूँ।

वह एक ग्राम था। एक नीलम-जैसे जलको लिये छोटी-सी नदी एक ओर बहती थी। वर्षा-ऋतुके अतिरिक्त उसमें बराबर कटिपर्यन्त जल प्रवाहित होता था। एक ओर थोड़ी भूमि खोद ली गयी थी और उसमें कुछ हरे-हरे पौधे उग चुके थे। खूब बड़ा एक घेरा बनाया गया था, पाले हुए पशुओंको रखनेके लिए। इन सबके चारों ओर कँटीले वृक्षोंकी डालियों, पत्थरों और लकड़ी-से एक परिखा बनायी गयी थी। यह थी ग्रामकी किले-बंदी। जिसमें वन-पशु अचानक आकर पशुओं एवं बच्चों-को हानि न पहुँचावें।

झोंपड़े थे कुल गिने हुए एक दर्जन और वे भी इस प्रकार बने थे जिसमें बीचका बड़ा झोंपड़ा उनके द्वारा घिरा हुआ था। बीचका झोंपड़ा था ग्रामके चौधरीका। प्रत्येक झोंपड़ेमें चमड़े, रस्सियाँ, वल्कल, बाँस और नारियलके बर्तन, धनुष-बाणोंसे भरे तूणीर, कुल्हाड़ी, कुदाल और भाले—इसी प्रकारकी सामग्री रक्खी थी। छोटे बच्चे नदी-तीरपर या पशुओंके साथ क्रीड़ा करते रहते थे। पुरुष वनमें फल एकत्र करने और आखेटका कार्य करते थे। स्त्रियाँ ग्रामके भीतरकी स्वच्छता, पशुओं-की देखभाल तथा गृहकार्य कर लेती थीं। साथ ही वे ग्रामकी रक्षा भी करती थीं। पुरुषोंकी अनुपस्थितिमें आये हुए रीछ, चीते आदि खूँखार पशु उनके हाथोंसे फेंके भालोंसे बचकर निकल जायँ, ऐसा कदाचित् ही हो सकता था।

× × ×

[२]

शीत, धूप एवं वर्षाने उसके शरीरको कुछ साँवला कर दिया था, नहीं तो वह गौर वर्णका था। दाढ़ी और सिरके चाँदी-जैसे सफेद बढ़े हुए केशोंने उसके झुर्री पड़े मुखको और भी भव्य बना दिया था। यद्यपि माता धरित्री उसे क्रोड़ीमें लेकर भगवान् भुवनभास्करकी पचास परिक्रमा पूरी कर चुकी थीं फिर भी उसके सुपुष्ट भुजदण्ड अभी शिथिल नहीं हुए थे। उसकी गठीली मांस-पेशियाँ अभी भी उसे स्फूर्तिमान् बनाये थीं और अब भी वनके भयंकर जन्तु उसके धनुषकी टङ्कारसे तथा ग्रामके युवक उसकी कठोर मुखमुद्रासे काँप उठते थे।

अपने झोंपड़ेके सामने बनाये चबूतरेपर, जिसपर वह प्रायः न्याय करनेके लिए ही बैठता था, आज बहुत कठोर होकर बैठा था। नित्यप्रतिसे कहीं अधिक तथा असाधारण कठोर होकर! ग्रामके सभी व्यक्ति उसकी आज्ञासे एकत्र किये गये थे—बिना कारण बतलाये। सब भीत थे, सब चिन्तित थे। पता नहीं, आज चौधरी किसपर अप्रसन्न हैं। उनकी अप्रसन्नताका सीधा अर्थ था किसी-न-किसीको अपने प्यारे प्राण उस मनुष्य-भक्षी वृक्षको भेंट करने होंगे। वहाँ एक ही दण्ड होता था—अपराधी ग्रामके बाहर लगे मांस-भक्षी वृक्षपर बलात् फेंक दिया जाता। उस असुर-वृक्षकी डालियाँ पल मारते झुककर उसे कस लेतीं और काँटेदार पत्तोंसे वह ढक जाता। फिर उसकी अस्थियाँ ही तब उज्ज्वल होकर गिरतीं, जब वह वृक्ष अपने पत्तोंके काँटोंसे उस जीवके रक्त-मांस-प्रभृतिका

अन्तिम बिन्दुतक शोषण कर चुका होता। उस वृक्षके नीचे पड़ी अस्थियोंके ढेरको देखकर अच्छे-अच्छोंका हृदय काँप उठता था। आज सभी ग्रामवासियोंके मानस नेत्र उसी वृक्षकी बोभत्स यातना देखकर कुण्ठित हो रहे थे।

चौधरीने एक बार सबकी ओर देखा। सबने मस्तक झुका लिये थे। 'ग्रामके सब लोग आ गये हैं', चौधरी यही देख रहा था। पासमें पड़े धनुषको एक बार उसने उठाया, देखा और रख दिया। तरकस उठाया, उसमेंसे बाण निकाले, उनका परीक्षण किया और फिर सबको यथास्थान रख दिया। इसी प्रकार उसने भाले, चमड़ेकी रस्सी और कुल्हाड़ीको भी देखा। ग्रामके लोग चुपचाप सब देख रहे थे। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि उनके सरदारको आज क्या हो गया है। सबसे अन्तमें उसने उठाया अपने सामने रक्खा हुआ एक मरे हुए जंगली बाघका ताजा निकाला होनेके कारण रक्तसे भीगा चमड़ा। बहुत साधारण-सी बात थी। आज ही ग्रामके लड़कोंने इसे चौधरीको भेंट किया था। विशेषता थी तो इतनी ही कि कई लड़कोंने मिलकर, बिना किसी ऐसे हथियारके, जो बाघके चमड़ेको काटे या छेदे, बाघको मार डाला था। इस प्रकारका यह पहला आखेट था; इसीसे वह चौधरीको भेंट किया गया था।

× × ×

[३]

'पशु भी इतना क्रूर नहीं होता।' चौधरी गम्भीर हो चला था। उसने मस्तक ऊपर उठाकर कहा, 'छिः तुम मनुष्य हो ? इतनी नीचतापूर्वक एक पशुको मारकर तुम्हें मानवताके नामपर कलङ्क लगानेका क्या अधिकार था ? तुमलोगों-जैसे नृशंस क्यों पृथ्वीका भार बढ़ावें ?' वह क्रोधसे काँपने लगा था। हाथकी मुट्ठियाँ कठोरसे कठोरतर होती जा रही थीं।

बात सबकी समझमें आ गयी। बाघ जिस रास्ते पानी पीने जाता था, उस रास्तेपर कटहल-जैसे गाढ़े दूधवाले एक जंगली वृक्षके दूधको खूब चौड़े-चौड़े पत्तोंपर अच्छी प्रकार लगाकर गाँवके लड़कोंने दूरतक बिछा दिया था। बाघ आया दूध लगे पत्ते उसके पंजोंमें चिपक गये। पंजे साफ करनेके लिए उसने उसे मुखपर रगड़ा। इस प्रकार बार-बार करनेसे उसके दोनों नेत्र दूध लगे पत्तोंसे ढँक गये और पंजे भी पत्ते भर जानेसे बेकार हो गये। झाड़ियोंमें छिपे लड़कोंने जब देखा कि बाघ पूरी तरह अंधा और पंजोंसे बेकार हो गया है तो डंडे लेकर निकल पड़े और उसे घेरकर उन्हीं डंडोंसे मार डाला। एक पशुको इतना असहाय बनाकर मारनेपर वह चौधरी क्रुद्ध था।

'मुर्दो ! जब कि तुम्हें उचित था कि बाघ असावधान या सोता होता तो उसे सावधान करते, तुमने उसे धोखा देकर मारा ?' चौधरी गर्जन कर रहा था। 'मैं उस नीच-को जानना चाहता हूँ जिसके पापपूर्ण मस्तिष्कमें यह बात

पैदा हुई और जिसने अपने साथियोंको पथ-भ्रष्ट किया। उसने लड़कोंकी ओर दृष्टि डाली।

सब निस्तब्ध थे। किसीने मस्तक ऊपर नहीं उठाया। 'उसे पुरस्कार मिलेगा।' चौधरीने तनिक मृदु स्वरमें कहा, 'वह मेरा उत्तराधिकारी बनेगा। जो उस अधमका नाम बतलावेगा।' लेकिन वे जंगली मानव इतने नीच नहीं थे। वे मानव थे और उसीके समकक्ष मानव, जो आज एक पशुकी निर्दय हत्यापर आपेसे वाहर हो रहा था। फिर क्या, वे अपनेमें-से ही एकके प्रति विश्वासघात करते ?

'ओह ! तुमलोग एक अपराधीको छिपाना चाहते हो ?' अपनी विकट हँसीके साथ उस बुड्ढेने धनुष उठाया। प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसने तरकसमेंसे एक बाण उसपर रक्खा। 'यह घोर विषसे बुझा है, इतना भयंकर बाण आजतक किसीने बनाया या कोई बनाता है—सो मैं नहीं जानता। मैंने भी क्रूर और पापी शत्रुके लिए, जो अचानक आकर प्राणसङ्कट उपस्थित करे, उसीके लिए इसे बनाया था। आज मैं इसे चढ़ाता हूँ। जिसमें साहस हो सामने आवे या इन सब लड़कोंको मैं इस विषैले बाणका लक्ष्य बनाऊँगा। यदि तुम इन्हें विषसे मरते नहीं देखना चाहते तो बाँधो और उस पेड़के पास ले चलो !'

'अपने ही बच्चोंको बाँधना होगा ! लेकिन किया क्या जाय ? चौधरी ठीक मार्गपर है। इतनी क्रूरता

करनेवाले जीवित रहनेका अधिकार भी क्या रखते हैं ?' सबने अपने अश्रुभरे मुख नीचे कर लिये ।

'चलो बाँधो !' चौधरीने कड़ककर कहा । सबके हाथोंमें रस्सियाँ आ गयीं और वे बच्चे उनके सम्मुख स्वतः आकर खड़े हो गये ।

× × ×

(४)

'आपलोग ठहरें !' चौधरीके घरमेंसे निकलकर एक पंद्रह वर्षका बालक दौड़ता हुआ आया और उसने अपनी घुँघराली अलकोंको समेटकर कानोंके पीछे डालते हुए गंभीरतासे कहा । उसका एकहरा शरीर, गौरवर्ण, बड़े-बड़े नेत्र और सलोना हँसता मुख लोगोंको प्रभावित किये बिना न रहा । फिर उसने चौधरीकी ओर मुख फेरा, पिताजी ! अपराध तो मेरा है ।' उसकी वाणीमें न कम्प था, न भय और न दैन्य ही । 'मैंने ही यह युक्ति सोची और कौतूहलवश साथियोंको प्रेरित किया । उन्हें समझा कर पथभ्रष्ट तो मैंने किया है । निश्चय ही यह एक जघन्य कृत्य है, जो मैंने बालचापल्यवश कर डाला है । मैं इसके लिए बहुत दुखी हूँ और दण्डके लिए प्रस्तुत भी ! इन बेचारे निरपराधोंको क्यों बाँधा जाय ?'

'उत्कच ! तुम ?' चौधरीका मुख फीका हो गया । एक बार वह हतप्रभ होकर चौंका, पर दूसरे ही क्षण उसने अपनेको सँभाल लिया । पूर्ववत् कठोर होकर उसने दुहराया 'तुमने यह घृणित काम किया है ?'

'जी हाँ ! मुझसे ही यह अपराध हो गया है।' उत्कच शान्त था।

'बाँधो इसे !' पुत्रस्नेहको ठुकराकर चौधरीने कहा।

'इसकी आवश्यकता न होगी !' उत्कचने लोगोंको चौंका दिया। 'मैं स्वयं ही उस वृक्षपर जाकर कूद पड़नेको तैयार हूँ।' वह उधर मुड़ पड़ा।

'इतना साहस ! इतना धैर्य।' लोगोंमें कानाफूसी होने लगी।

'ऐसा नहीं, हो सकता।' बच्चोंके समूहने एक-स्वरसे कहा। उन्होंने उत्कचको पकड़कर रोक लिया था। 'भैया उत्कचने उस बाघको एक डंडा भी मारा नहीं था।' वे चौधरीसे न्याय चाहते थे। 'केवल सलाह मात्र उन्होंने दिया था। अपराध तो हमलोगोंने किया है।'

इतनेमें ही स्त्रियोंकी भीड़ हो गयी। माताओंने बच्चोंको गोदमें छिपा लिया और वे रोने-चिल्लाने लगीं।

चौधरीको यह सब सह्य नहीं था। उसने चिल्लाकर कहा, 'तब उत्कचके साथ इन सबको उस वृक्षपर फेंक दो।'

× × ×

(५)

'ऐसा नहीं हो सकता।' एक ऊँचा तरुण सामने आया। 'मुझे इस धृष्टताके लिए आप क्षमा करें।'

चौधरी चौंक पड़ा। जीवनमें पहली बार उसे प्रत्युत्तर मिला था। उसने क्रोधसे जलते हुए पूछा, 'ऐसा नहीं हो सकता ?'

'जी हाँ, ऐसा नहीं हो सकता।' तरुणका स्वर नम्र किंतु दृढ़ था। 'इन भोले बच्चोंने जो कुछ भी किया है—बाल-स्वभावके कारण अज्ञानवश ही किया है। इसके लिए इन्हें इतना कठोर दण्ड नहीं होना चाहिए। यदि वे अपराधी हैं और उन्होंने एक पशुकी निर्दय हत्या की है तो क्या साथ ही उन्होंने अभी-अभी असीम धैर्य और मैत्रीका परिचय नहीं दिया है ? क्या सहचरोंके लिए इस प्रकार हँसते हुए अपनेको न्यौछावर कर देनेवाले इन होनहारों-को एक पशुके लिए मिटा दिया जा सकता है ? कभी नहीं।'

'कभी नहीं !' उसके साथ ही ग्रामके दूसरे लोगोंने चिल्लाकर दुहराया।

'तो आपलोग विद्रोह करना चाहते हैं ?' चौधरी कुछ धीमा पड़ चुका था।

'जी नहीं !' दूसरे कुछ कहें, इससे पूर्व ही उसी तरुणने कहा, 'हम केवल इन बच्चोंके अनोखे साहस और उत्कचके त्यागका पुरस्कार देना चाहते हैं। हम अपने अग्रणीसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करना चाहते हैं कि इन्हें क्षमा किया जाय।'

'यदि मैं इसे स्वीकार न करूँ तो ?' चौधरीका स्वर शान्त हो गया था।

'तो हमें असीम कष्ट होगा !' तरुणका स्वर आर्द्र हो चला था। 'हम आपसे क्षमा चाहेंगे और अपने कर्तव्यका पालन करेंगे।'

'कर्तव्य कौन-सा ?' चौधरीने बीचमें रोका।

'हम इन बच्चोंको बीचमें कर लेंगे। प्रिय उत्कचसे अनुरोध करेंगे कि वह हमारा अग्रणी बने और आपके संरक्षण एवं कृपासे प्राप्त इन गृहों तथा पशुओंको छोड़कर कहीं दूसरे अनुकूल स्थानको ढूँढ़ने जायँगे।' तरुणने वाक्य पूरा किया।

'पर मेरा यह बाण'..........चौधरी कुछ कहना चाहता था।

'वह धनुषसे फिर त्रोणमें पहुँच जायगा।' तरुणने बीचमें ही विश्वस्त स्वरमें कहा। 'प्रतिरोधहीन हम-लोगोंपर इस बाणको छोड़नेके लिए आपके हाथ बढ़ेंगे—इसे मैं नहीं स्वीकार कर सकता। हमारे अग्रणीका हृदय इतना कठोर है, इसे मैं मान नहीं सकता।'

'यह सब कुछ नहीं।' चौधरीने धनुष-बाण फेंक दिया। 'जिन लोगोंने मुझे यह पद और अधिकार दिया है, उसे छीननेका भी अधिकार उनको है। यदि आपलोग मेरे रक्षणमें नहीं रहना चाहते तो मैं स्वयं इस पदको छोड़ता हूँ। आप अपना चौधरी चुन लें।'

'और आप ?' आश्चर्यसे सब पुकार उठे।

'मैंने आजतक कहकर पलटना नहीं सीखा है।' चौधरी दृढ़ और शान्त स्वरमें कह रहा था। 'आपलोग

जिन्हें क्षमा करना चाहते हैं, मुझ अकेलेको क्या अधिकार है कि मैं उन्हें दण्ड दूँ। इन बच्चोंकी धीरता भी उन्हें क्षमा कर देनेको बाध्य करती है। पर—अपराध उत्कच-का है और उत्कच मेरा पुत्र है, अतः पुत्रका अपराध पिताका ही हुआ। उस पशुकी निर्दय हत्या—उसका तड़प-तड़पकर प्राण-त्याग—उफ ! मैं स्वयं इसका प्रायश्चित्त करूँगा।'

कोई कुछ कहे, इससे पूर्व ही चौधरी चबूतरेसे कूदा और दौड़ पड़ा। लोग हक्के-बक्के-से रह गये। वह सीधा उधर जा रहा था, जिधर वह मांस-भक्षी वृक्ष था। लोग दौड़े सही, पर आज बूढ़े चौधरीके साथ दौड़ना सरल नहीं था। वह दौड़ता ही गया और उस वृक्षपर जाकर कूद पड़ा। वृक्षकी पत्तोंसे भरी डालियाँ झुकीं और उन्होंने चौधरीको चारों ओरसे छिपा लिया।

(६)

चौधरीका शरीर रक्तसे भींग गया था। काँटोंसे छिदे घावोंसे रक्तके फवारेसे निकल रहे थे। फिर भी चौधरीके मुखपर वेदनाका नाम न था। उसने अपने लोगों तथा उत्कचसे केवल एक वाक्य कहा, 'तुमलोग मानव हो, तुम्हें जीवित मानव रहना चाहिए। यदि तुम्हारे भीतरकी मानवता मर जाय तो तुम जीते हुए भी मृत हो जाओगे।'

इसी समय वह मांस-भक्षी वृक्ष धड़ामसे गिर पड़ा। चौधरीके भागनेपर एक तरुणने चौधरीका वह धनुष और

भयंकर विषबुझा बाण उठा लिया था। चौधरीको बचानेके लिए उसने वह बाण वृक्षकी जड़में मारा था। उसीके विषसे वृक्षकी डालियाँ मुरझा गयी थीं और चौधरीका काँटोंसे बिंधा शरीर उनके पंजेसे छूट गया था। विषकी गर्मीसे पेड़ शुष्कप्राय होकर गिर पड़ा।

लोगोंने देखा—उनके बीचमें चौधरीका वह शरीर चेष्टाहीन पड़ा है। यद्यपि चौधरीका शरीर अब निर्जीव था—फिर भी वह उन लोगोंके लिए गौरवास्पद था, क्योंकि वह एक जीवित मानवका शरीर था।

स्वस्थ मनुष्य

मनुष्यका—विशेषत: प्रतिभाशाली मनुष्यका मन कब जग जायगा, कोई कह नहीं सकता। जब एक बार किसी-की सुप्त चेतना जाग्रत् हो जाती है, विश्वके लिए वह विश्वस्रष्टाका अमर उपहार होती है। लेकिन कैसे जगे वह ? हम आप नित्य चूल्हेपर चढ़े बर्तनमें उठती भापसे उसके ढक्कनको हिलता देखते हैं, लेकिन वाष्पकी शक्तिसे चलनेवाले आजके बड़े-बड़े यन्त्रोंका आविष्कार तो वह कर सका जिसकी चेतनाको उस हिलते ढक्कनने झकझोर दिया। पेड़से टूटा फल पृथ्वीपर ही गिरता है और मनुष्य इसे युगोंसे देखता आ रहा है, किंतु न्यूटनकी चेतनाको एक दिन एक साधारण फलने वृक्षसे भूमिपर गिरकर प्रबुद्ध कर दिया था। आज भी एक सामान्य घटनाने डा० जान्सके चित्तको क्षुब्ध कर दिया है। घटना तो सदा ही क्षुद्र एवं सामान्य होती है ; पर मानवकी अन्तश्चेतनामें जो अनन्त ज्ञान है, वह कभी-कभी अपनेको व्यक्त करनेका उसे मार्ग बना लेता है।

डा० डब्ल्यू० सी० जान्स चिकित्साशास्त्री हैं, चिकित्सक नहीं। चिकित्साशास्त्र उनके मनन-चिन्तन एवं

अनुशीलनका विषय है। वे जब चिकित्सक बनते हैं—बहुधा बनते हैं, पर बनते हैं केवल अनुशीलनके लिए। उन्होंने डाक्टरी (एलोपैथी) का तो उच्च अध्ययन किया ही है, यूनानी चिकित्सा-पद्धति (हकीमी), होम्योपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति, मानसिक चिकित्सा-पद्धति तथा आयुर्वेदका भी भरपूर अनुशीलन किया है। वे यूरोप एवं अमेरिकाके विभिन्न स्थानोंमें रहे हैं, अफ्रिकाके जंगलोंमें भटके हैं तथा चीन और तिब्बतके दुर्गम स्थानोंमें भी अनेकों वर्ष व्यतीत कर चुके हैं। आयुर्वेदके अध्ययन तथा मानसिक चिकित्सासे सम्बन्ध रखनेवाले योगके ज्ञानको पूर्ण करनेके विचारसे वे भारत आये हैं। यहाँ अनेक सुप्रसिद्ध चिकित्सकोंसे उन्होंने परिचय कर लिया है। धुनके पक्के, चाहे श्रम करने ऐवं कष्ट सहनेको उद्यत, सदा हँसमुख, विनम्र इन सत्तर वर्षके वृद्ध पुरुषका उत्साह किसी युवकको लज्जित कर सकता है। इनकी मधुर वाणी एवं विपुल ज्ञान मित्रता प्राप्त करनेमें असफल होना जानता ही नहीं। ऐसे सुशील व्यक्तिने यदि अनेक एकान्तप्रिय विरक्त साधुओंकी कृपा प्राप्त कर ली है, तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है।

आज डा० जान्स पहली बार अपने कमरेमें इधर-से उधर उद्विग्न-से घूम रहे हैं। उनका झबरा 'पीटर' भी आज हैरान है। उसके स्वामी कठिन-से-कठिन समयमें स्वस्थ एवं स्थिर रहनेवाले हैं; आज क्या हो गया है उन्हें? वह कूँ-कूँ करता पास गया, सामने भूमिपर लेटा, गोदमें पहुँचनेके लिए उछला—बेचारा मूक प्राणी और

क्या कर सकता है। आज उसे पुचकारा नहीं गया, स्नेहभरी थपकी नहीं मिली। उसके स्वामी मस्तक झुकाये इधर-से-उधर चक्कर काट रहे हैं। कभी-कभी मस्तकपर गर्दनके पास दाहिना हाथ रगड़ लेते हैं। उनके उजले घुँघराले बाल तनिक हिल जाते हैं और बस! सामने लेटनेपर भी पीटरकी ओर उन्होंने नहीं देखा। वे उसे बचाकर आगे बढ़ गये। बेचारे कुत्तेने बहुत प्रयत्न किया उन्हें प्रसन्न करनेका और अन्तमें हारकर वह एक ओर भूमिमें ही बैठकर सूनी दृष्टिसे देखने लगा अपने स्वामीको। अब उसमें भी उछलकर कोचपर बैठनेका उत्साह नहीं रह गया था।

बात कुछ नहीं है। आज प्रातःकाल एक नवयुवक डाक्टर मित्र डा० जान्ससे मिलने आये थे। उन्होंने बताया 'कल कुछ भारतीय लोगोंके साथ एक अंग्रेज सज्जन दोपहरमें मोटरसे कहीं घूमने गये थे। रास्तेमें सबको प्यास लगी। आसपास पानी पीनेका कोई व्यवस्थित प्रबन्ध न देखकर लोगोंने मोटर रोकी और सड़कके किनारे एक पानकी छोटी दूकानसे सोडाकी बोतलें लेकर गलेको गीला किया। उन अंग्रेज सज्जनने भी दूसरा उपाय न देखकर एक बोतल सोडा पी लिया। ये पानवाले वैसे भी गन्दे रहते हैं और नगरके बाहर सड़कके किनारे-की दूकानोंका तो पूछना ही क्या। वे कुछ प्रामाणिक कम्पनियोंका सोडा तो रखते नहीं। बेचारेको रास्तेमें ही हैजा हो गया। घर लौटनेपर चिकित्साका बहुत प्रयत्न हुआ; किंतु वे चल बसे। अच्छे सबल स्वस्थ युवक थे

वे।' सुनानेवालेके लिए और हम आपके लिए भी यह एक सामान्य घटना है। ऐसा तो प्रायः होता है। इसमें सोचनेकी कुछ बात ही नहीं है। लेकिन डा० जान्सकी प्रसुप्त चेतना आज इस नन्हेंसे समाचारसे जाग उठी है। डाक्टर उद्विग्न हो गये हैं।

'एक ही दूकानसे एक ही सोडा सबने पिया था. केवल अंग्रेज क्यों मरा ? यूरोपियन लोग स्वास्थ्य एवं स्वच्छता-के नियमोंका बहुत सावधानीसे पालन करते हैं और वे ही अधिक शीघ्र अस्वस्थ होते हैं।' डाक्टरका मन अनेक बातें सोच रहा है—'ये भारतीय मजदूर जहाँ चाहे वहाँ लेटते हैं, चाहे जिस दूकानसे खाते हैं, चाहे जहाँ पानी पीते हैं। अफ्रिकाके जङ्गली लोगोंकी बात और ये कलकत्तेके गन्दे मुहल्लोंको साफ करनेवाले भङ्गी--ये भङ्गी गन्दगी साफ करतें हैं, सभी प्रकारके लोगोंका जूंठा खा लेते हैं और स्वस्थ रहते हैं। इनका शरीर बलवान् रहता है।'

डाक्टर जान्स जानते हैं कि शरीरमें रोगाणुओंके प्रवेश करनेपर उन्हें नष्ट करनेवाला प्रतिविष स्वतः बनता है। जो गंदगीमें ही रहते हैं, उनके शरीरमें उसे सहनेकी शक्ति आ जाती है। उनका शरीर विषोंको पचा लेता है। लेकिन आज डाक्टरका इससे सन्तोष नहीं। 'स्वास्थ्य क्या है ? उज्ज्वल वस्त्रपर एक छोटा-सा धब्बा भी दूरसे दिखता है। निर्मल शरीर थोड़ा-सा विकार भी सह नहीं पाता; किंतु शरीर तो वस्त्र नहीं है। तब किसी

थोड़े भी विजातीय द्रव्यको न सह पानेवाला छुईमुई-सा स्वास्थ्य और प्रतिविषोंसे भरा चाहे जैसी गंदगी और रोगाणुओंको पचा जानेवाला स्वास्थ्य ? डाक्टरको कोई तर्क सन्तोष नहीं दे पाता है। वे घूम रहे हैं इधर-से-उधर और बार-बार उनके मुखसे बहुत धीरेसे अपने-आपसे पूछता-सा शब्द निकलता है—'स्वास्थ्य क्या है ?'

× × ×

'शरीरमें किसी रोगके कीटाणु न हों, कोई विजातीय द्रव्य न हो, रक्ताभिसरण ठीक हो, श्वासप्रणाली, स्नायु एवं ग्रंथिमण्डल आदि शरीरके विभिन्न अवयव ठीक काम करें, यह स्वास्थ्यका पूरा लक्षण है।' यूरोपीय विज्ञानके इस मतमें किसीको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। लेकिन डाक्टर जान्सने वह बड़ी-सी सुन्दर लाल जिल्दकी पुस्तक झुँझलाकर बन्द कर दी।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

आयुर्वेदके ग्रन्थको उलटते हुए डाक्टर रुक गये। 'कफ, पित्त, वात—ये तीनों दोष समान रहें, पाचन क्रिया ठीक हो, रक्त-मेद-मांसादि धातुओंमें कोई विकार न हो, उनका ठीक परिपाक होता रहे और मलाभिसरण उपयुक्त रूपमें हो—यह तो एलोपैथीकी परिभाषा ही है जो बहुत पहले कुछ भिन्न शब्दोंमें भिन्न ढगसे कही गयी थी।' डाक्टरको चिन्ताधारा आगे अटकी—'चित्त,

इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न रहें—निर्मल रहें ?' उन्होंने ग्रन्थ बन्द करके रख दिया और मेजपर बायें हाथकी कुहनी टेककर हथेलीपर सिर रखकर नेत्र बन्द कर लिये।

'चित्त निर्मल, इन्द्रियाँ निर्मल, मन निर्मल ?' डाक्टर जानते हैं कि संस्कृतके इस 'प्रसन्न'का अर्थ 'खुश' नहीं—'निर्मल' होता है। अब चिकित्साशास्त्र मनोविज्ञानके क्षेत्रमें यहाँ प्रवेश कर चुका था। विचारोंका प्रभाव शरीरपर पड़ता है, यह बात प्रत्येक चिकित्सक जानता है, किंतु चित्त एवं मनकी निर्मलताका जो अर्थ है, उस भारतीय अर्थको जानते हुए डाक्टर जान्स यह कैसे मान लें कि यहाँ आयुर्वेद केवल मनोविज्ञानकी बात करता है और 'प्रसन्न'का अर्थ चित्तमें कोई चिन्ता, मनमें उद्विग्नता तथा इन्द्रियोंमें कोई क्लेशका न होना ही है। उन्हें स्पष्ट लगता है कि आयुर्वेद यहाँ अध्यात्मशास्त्र बन गया है और वह चित्तको कामादि विकारोंसे रहित, इन्द्रियोंको अपने भोगोंकी लोलुपतासे निरपेक्ष और मनको स्थिर पाना चाहता है। 'स्वास्थ्यके लिए अध्यात्मकी यह आवश्यकता ?' यूरोपीय विज्ञानने तो कभी यह आवश्यकता अनुभव की नहीं। स्वास्थ्यका उद्देश्य ही है—'भोगक्षमता' और यहाँ स्वास्थ्यके लिए भोगवासनाका अभाव ही अपेक्षित माना गया है।' डाक्टरकी समस्या सुलझनेके बदले उलझती जा रही है।

'कोई भारतीय साधु कदाचित् इसे ठीक समझा सकें। डाक्टरने अपने वैद्य मित्रोंसे समझनेका प्रयत्न कर

लिया है। उन्हें लगता है कि अधिकांश लोगोंने कुछ शब्द रट लिये हैं। एक शब्दके बदले दूसरा शब्द, एक पहेलीके बदले दूसरी पहेली, 'मघवा'के स्थानपर 'विडौजा' किंतु उन शब्दोंका अर्थ जैसे स्वयं उनकी बुद्धिमें नहीं है। जो स्वयं ही नहीं समझता, वह दूसरेको कैसे समझा सकता है। लेकिन भारतीय साधुओंकी बात दूसरी है। कोई समय था जब डाक्टर जान्स भारतके ऋषियोंकी सर्वज्ञताका भरपूर उपहास करते थे। 'भला कहीं कोई एक व्यक्ति सब कुछ जाननेवाला हो सकता है?' अब बात बदल गयी है। अब वे प्रायः कहते हैं—'भारत सचमुच जादूगरोंका देश है और यहाँका जादू न केवल बाहरी पदार्थोंमें उलट-फेर करता है, बौद्धिक एवं मानसिक ज्ञानमें भी कल्पनातीत चमत्कार रखता है।' इन कुछ महीनोंमें डाक्टर जिन संतोंके परिचयमें आये हैं, उनकी प्रतिभाने इन्हें चमत्कृत कर दिया है।

'एकेन विज्ञातेन सर्वं विज्ञातं भवति।'

श्रुतिका तात्पर्य भले डाक्टरने न समझा हो; पर वे अब यह समझ गये हैं कि इस अद्भुत भूमिपर जो निरपेक्ष साधु यत्र-तत्र मिलते हैं, उनके लिए कोई प्रश्न असाध्य नहीं है।

जब हम कहीं अपनी धारणासे सर्वथा विपरीत कुछ पाते हैं, हमारा अनुमान वहाँ अस्त-व्यस्त हो उठता है। डाक्टरने कभी नहीं सोचा था कि मनुष्य इतना सहनशील तथा इतना निरपेक्ष हो सकता है समाज एवं समाजके

भोगोंसे। 'व्यक्ति अपने-आपमें पूर्ण है'—यह बात उनका वैज्ञानिक मस्तिष्क किसी प्रकार सुलझा नहीं पाता। सौभाग्यसे उनका परिचय गङ्गाकिनारे पड़े रहनेवाले एक कौपीनधारीसे हो गया है और अब डाक्टर कहते हैं 'ये भारतीय साधु बुद्धिके क्षेत्रमें जादूगर हैं। सभी अटपटे प्रश्नोंका उत्तर प्रश्न करनेसे पूर्व ही उनके पास तैयार रहता है।' आप इसे डाक्टरकी श्रद्धा कहें या अतिशयोक्ति; किंतु सत्य यही है कि जो मस्तिष्क उस एक चिन्मय आलोकमें आलोकित हो उठता है, उसके लिए ग्रन्थि या उलझन कहीं होती ही नहीं।

'जिसका चित्त, जिसकी इन्द्रियाँ और जिसका मन निर्मल हो, वही बता सकता है कि इनकी निर्मलताका स्वास्थ्यसे क्या सम्बन्ध है।' डाक्टर जान्सने अन्तमें पुस्तकोंको समेटकर यथास्थान लगा दिया। अव्यवस्था उन्हें पसंद नहीं है। वे स्वच्छ एवं व्यवस्थित व्यक्ति हैं। अपने घरमें और मस्तिष्कमें भी वे ऐसा ही रहना पसंद करते हैं। अपने बंगाली मित्रको फोन किया उन्होंने। यद्यपि मित्रको आश्चर्य हुआ कि आज दोपहरीमें डाक्टर क्यों गङ्गाकिनारे सन्त-दर्शनको उत्सुक हो गये हैं, परंतु वे साथ देनेको प्रस्तुत हो गये।

डाक्टर जान्सने कई भारतीय भाषाओंका अच्छा अभ्यास कर लिया है। वे हिंदी बहुत स्पष्ट बोलते हैं। लेकिन अनेक बार साधु-संतोंके कुछ शब्दोंको समझनेमें उन्हे सहायककी आवश्यकता होती है। जब डाक्टरके

मित्र हरीन्द्रचन्द्रजी उनके यहाँ पहुँचे, डाक्टर चलनेको प्रस्तुत उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

× × ×

'तूने मुझे क्या समझ रक्खा है? मैं तेरी सारी हड्डी-पसली तोड़ दूँगा।' आज नाथूराम बहुत अधिक क्रोधमें है। वह एक मैले कपड़े पहने बूढ़े व्यक्तिपर लाल-पीला हो रहा है। नाथूराम खूब तगड़ा पहलवान है। आज अपने अखाड़ेके समीप खड़ा वह इस प्रकार अपने-आपेसे बाहर हुआ जा रहा है। कुशल है कि उससे कुश्ती लड़नेका अभ्यास करनेवाले उसके शिष्य जा चुके हैं। यदि उन लड़कोंमें-से कोई भी यहाँ होता तो बात बहुत बढ़ गयी होती।

'बेचारा बूढ़ा!' डाक्टर जान्सको दया आ गयी। उन्होंने अपने साथीसे कहा—'यदि एक भी थप्पड़ इस मोटे आदमीने इसे मारी तो गिर ही पड़ेगा यह। हम क्या इसे बचा नहीं सकते?' मोटर अब आगे नहीं जा सकती थी। उसे कुछ गज पीछे छोड़कर डाक्टर महात्मा-जीके पास जानेके लिए उतर पड़े थे और पैदल चल रहे थे। एक बलवान् व्यक्ति एक दुर्बलको कष्ट देनेको उद्यत हो तो कोई भी सहृदय तटस्थ निरीक्षक कैसे रह सकता है?

'मैं इसे जानता हूँ।' इतना कहकर हरीन्द्रचन्द्रजी आगे बढ़े और स्वरको कोमल तथा सौहार्दपूर्ण बनाकर

उन्होंने कहा—'नाथू भाई ! आज तुम यहाँ अकेले कैसे हो ?'

'मेरा जाँघिया छूट गया था यहाँ। घर जानेपर बहुत पीछे याद आयी। सब लड़के अपने-अपने घर चले गये थे। यहाँ आकर देखता हूँ…।' बूढ़ेकी ओर घूरते हुए उसने देखा।

'जाने भी दो !' हरीन्द्रचन्द्रने देख लिया कि घटनाका पता लगानेकी उत्सुकता ऐसे अवसरोंपर अनर्थकारी होती है। विवरणमें जानेसे उत्तेजनाको प्रोत्साहन मिलता है। उन्होंने तनिक हँसते हुए कहा—'सिंह गीदड़ोंसे झगड़ा नहीं किया करते। ये डाक्टर साहब उन अवधूत स्वामीके पास जाना चाहते हैं। तुम उस टीलेतक चलकर उनका स्थान दिखा दोगे हमें ?'

स्तुति किसे प्रसन्न नहीं करती। पहलवानको 'सिंह' कहा गया था। उसके गर्वने उसके क्रोधको शिथिल कर दिया। एक पढ़े-लिखे बाबू और एक गोरे साहब उससे सहायता माँग रहे थे, अब भला वह एक दुर्बल बूढ़ेसे झगड़ता कैसे रह सकता था। झटपट वह समीप चला आया और मार्ग दिखानेको आगे बढ़ गया। अवश्य वह महात्माजीके समीपतक ले जाता दोनोंको ; किंतु साहबने उसे आग्रहपूर्वक लौटा दिया। वे अकेले ही महात्माजीके पास जाना चाहते थे।

'ओह, तो आप मनोवैज्ञानिक भी हैं।' डाक्टर जान्सने पहलवानके चले जानेपर अपने साथीकी ओर मुसकराते

हुए देखा। 'मैं जानता हूँ कि हमें किसी मार्ग-दर्शककी आवश्यकता नहीं थी।'

'यदि उस बूढ़ेको यह मारता, आप इसे दण्ड देनेका समर्थन करते या नहीं ?' हरीन्द्रचन्द्रजीने दूसरा ही प्रश्न किया। डाक्टर जान्ससे अपराध-विज्ञानपर उनकी अनेक बार बातें हुई हैं। डाक्टरका मत है कि 'अपराधका दण्ड देना एक नृशंस प्रथा है। अपराध एक प्रकारके मानसिक रोगका परिणाम है और इसलिए अपराधीकी चिकित्सा होनी चाहिए।' इसी मतको लक्ष्य करके यह प्रश्न किया गया था।

'आपने देखा ही कि क्रोधके समय उसके नेत्र और मुख कैसे विकृत एवं लाल हो गये थे।' डाक्टरने कहा— 'आप यह भी जानते हैं कि यदि क्रोध पर्याप्त अधिक हो तो ज्वर आ सकता है। इसका अर्थ है कि क्रोधका थोड़ा आना भी विकृति ही है।'

'लेकिन उसका आना रोका कैसे जाय ?'

'कम-से-कम दण्ड देनेसे तो वह रुकता नहीं।' डाक्टर ने कहनेको तो बात कह दी; किंतु उनके मनने एक दूसरी ही चिन्तन-परम्परा प्रारंभ कर दी। वे अचानक फिर गंभीर हो गये। अब बात-चीत करना उनके लिए शक्य नहीं रहा।

'क्रोधसे ज्वर आ सकता है, भयसे आ सकता है, कामसे आ सकता है।' डाक्टरका चित्त अंधड़से उछलते हुए सरोवरकी भाँति हो रहा था। वे सोच रहे थे, यह

कहना ठीक नहीं ; उनके भीतर स्मृतियों, घटनाओं और विचारोंका तूफान चल रहा था।

'मनके सभी विकार शरीरमें रोग पैदा कर सकते हैं स्वस्थ मनके बिना स्वस्थ शरीर पाया नहीं जा सकता। 'स्वस्थ मन ?' शरीरके स्वास्थ्यके समान ही यह भी एक उलझा प्रश्न ही है।' मन वासना-रहित, विकार-रहित, सङ्कल्प-रहित भी हो सकता है—यह बात एक व्यावहारिक बुद्धिमें क्या सरलतासे आती है ?

'आपकी मानसिक चिकित्सा कैसी होगी ?' हरीन्द्र-चंद्रजीने पूछा। उनका तात्पर्य स्पष्ट था—यदि मनुष्यको किसी आपरेशन, इंजेक्शन या किसी भी उपायसे ऐसा बना दिया जाय कि वह कभी क्रोध न करे, कभी उसमें कामका उदय न हो, लोभ तथा मोह उसके मनसे विदा हो जायँ, कैसा होगा वह मनुष्य ? वह क्या सामाजिक प्राणी हो सकेगा ? 'प्रकृतिने जो वासनाएँ दी हैं, वे क्या निरर्थक ही हैं ? उनको निर्मूल कर देनेपर जो कुछ बच रहेगा, वह क्या होगा ? क्या ऐसा कर देना शक्य भी है ?'

'हम तो अभी अन्वेषक हैं और वह भी अंधकार भरे जङ्गलमें बिना लक्ष्यके भटकनेवाले।' डाक्टरके स्वरमें व्यङ्ग या उत्साह नहीं, थकान थी। 'हमसे बहुत अच्छी प्रकार आप इसे जानते हैं। भारत—केवल भारत ही इसका उत्तर दे सकता है।'

एक दिन भारतने विश्वको इसका उत्तर दिया था। आज भी उसी उत्तरके लिए ये सभ्यताके पुत्र भगवती

भागीरथीके उज्ज्वल पुलिनपर बबूलकी पतली छायामें केवल कौपीन लगाये पड़े रहनेवाले दो मुट्ठी हड्डीके एक वीतरागके समीप उसी शाश्वत उत्तरकी आशासे जा रहे थे। कोई तर्क या कोई भौतिक अन्वेषण उसे पा जो नहीं सकता।

× × ×

'डाक्टर ! स्वास्थ्य किसे कहते हैं ?' डाक्टर जान्सने मस्तक झुका लिया। जो प्रश्न पूछने वे संतके पास आये थे, संतने वही प्रश्न उनसे पूछा था और एक डाक्टरसे ऐसा प्रश्न न पूछा जाय तो पूछा किससे जाय।

दोनों प्रणाम करके रेतमें ही बैठ गये थे। जहाँ आडम्बर नहीं होता, दूसरेको भी उसकी वहाँ आवश्यकता नहीं होती। अवधूत स्वामी तो अवधूत ठहरे, उनके पास आज पहली बार एक जलसे भरी हँडिया दिखायी पड़ रही थी और उनका शरीर भी कुछ कृश लगता था।

'तीन दिनोंसे आँव पड़ रहा है और कुछ ज्वर भी है।' पूछनेपर उन्होंने बताया। डाक्टर शरीर-परीक्षण करने उठने उगे तो उन्होंने रोक दिया—'तुम व्यग्र मत बनो। मुझे कुछ हुआ नहीं हैं। शरीरको अपना भोग भोग लेने दो।' जब यह आशा ही नहीं कि ओषधि दी जा सकेगी, तब केवल निदानके लिए परीक्षणके आग्रहसे लाभ भी क्या।

'तुम क्या सोचते हो कि मैं अस्वस्थ हूँ ?' संतने पूछा—'स्वास्थ्य तुम किसको कहते हो ?'

'मैं स्वयं आपके चरणोंमें यहीं पूछने आज आया।' डाक्टरने थोड़ेंमें अपनी समस्या उपस्थित कर दी।

'तुम चिकित्सा-शास्त्रके विद्वान हो, भला ये बातें मैं क्या जानूँ।' संत हँस पड़े। 'मैं तो यह जानता हूँ कि शरीर वा शरीरके किसी अङ्ग तथा उसकी आवश्यकताका स्मरण न आवे तो शरीरको स्वस्थ समझना चाहिए।'

'और मनकी आवश्कताका स्मरण न हो तो मनको स्वस्थ कहना होगा ? डाक्टरने पूछा। उनके मुखकी भंगिमासे लगता था कि उन्हें कुछ प्रकाश मिला है।

'बात तो ऐसी ही है, पर उसे और सीधे ढंगसे कहा जाय तो अच्छा।' संतने परिभाषाके शब्दोंमें परिवर्तन किया—'मन भूतकालकी उधेड़-बुन एवं भविष्यकी चिन्ता न करके वर्तमानमें शान्त स्थिर रहे, यह मनका स्वास्थ्य है।'

'लेकिन अनेक बार शरीरके भीतर ऐसे रोग बढ़ते रहते हैं, जिनका रोगीको कुछ भी पता नहीं होता।' डाक्टरने शंका की।

'तुम शरीरकी बात छोड़ दो।' संतके उत्तरने दोनोंको चौंकाया। वे यदि शरीरकी बात छोड़ दें तो फिर स्वास्थ्य-जैसी क्या वस्तु रह जायगी। अवधूतने उनके भावपर ध्यान नहीं दिया। वे कहते गये। —'मेरा शरीर इस समय अस्वस्थ है, यह तुम देख रहे हो। शरीरमें जो विकार हैं, उनसे पीड़ा भी है। लेकिन मैं मनको वहाँसे

हटा सकता हूँ और तब इस रोग और पीड़ाका कुछ अर्थ नहीं रह जाता।'

'पीड़ाकी उपेक्षा करके मनको अन्यत्र लगा देना, यह एक चिकित्सा-पद्धति तो है।' डाक्टरने जान-बूझकर नहीं कहा कि यह पद्धति सर्वसाधारणके लिए बहुत व्यावहारिक नहीं है।

'जो स्वास्थ्यके सभी नियमोंका पालन करते हैं वे बहुत थोड़ेसे विपरीत कारणके आनेपर बीमार हो जाते हैं। जो स्वास्थ्यके विपरीत स्थितिमें रहते हैं, उनके शरीरको सब सहनेका अभ्यास तो होता है; किंतु जब वे बीमार होते हैं, तब उनकी चिकित्सा दुःसाध्य हो जाती है। एकके मनमें रोगका भय लगा रहता है और उसके शरीरको अक्षम बनाता है। दूसरेका मन निश्चिन्त होता है; किंतु शरीर अनजानमें ही विकृतियाँ एकत्र करता रहता है। दोनोंकी स्थितिका समन्वय किये बिना तुम्हें स्वास्थ्य कैसे मिलेगा?' संतने इस बार पूरी व्याख्या कर दी।

दोनोंका समन्वय?' डाक्टरके लिए बात अभी पूरी स्पष्ट नहीं थी।

'वही जो आयुर्वेद कहता है। शरीर एवं मन दोनोंका स्वास्थ्य।' संतने गम्भीरता से देखा—'तुम स्वयं भी तो मानते हो कि मनोविकारोंके रहते मनुष्य पूरा स्वस्थ नहीं हो सकता।'

'लेकिन ऐसा क्या सम्भव है?'

'खूब सम्भव है, यदि मनुष्य भूत एवं भविष्यकी उलझनमें अपनेको व्यवत रखनेका मूर्खतापूर्ण आग्रह छोड़ सके।' संतने समझाया—'सम्मुख उपस्थित कर्त्तव्यका पालन करने एवं उसीमें पूर्ण मनोयोग करनेसे मनुष्यकी वैयक्तिक एवं सामजिक कोई हानि नहीं होती। उसके कार्य उत्तम ढंगसे सम्पन्न होते हैं। उसका मन स्वस्थ रहता है। क्योंकि मन अस्वस्थ होता है कामनासे और कामनाका उद्भव भूतकालकी स्मृति तथा भविष्यके चिन्तनसे होता है। मनके अस्वस्थ होने पर इन्द्रियाँ चञ्चल होती हैं और तब शरीरकी चिन्ता प्रधान बन जाती है।'

'मन स्वस्थ रहे तो क्या शरीर स्वस्थ रहेगा? डाक्टरने पूछा।

'मैं ऐसा कहाँ कहता हूँ। संत स्नेहभरे स्वरमें कह रहे थे—'तुम क्या पानीको विकृत होनेसे रोक सकते हो? शरीर तो पानीकी भाँति पार्थिव है। वह प्रारब्धका बुलबुला है। उसे अपने भोग भोगने होंगे और भोगने चाहिए। शरीरकी बहुत चिन्ता ही अस्वास्थ्य है। मन स्वस्थ हो तो क्लेश नहीं होगा और इससे अधिक मनुष्य और क्या चाह सकता है?'

'हमारे ये चिकित्सा-शास्त्रके प्रयत्न?' डाक्टरका स्वर कहता था कि उनका समाधान हो चुका है। उन्हें अब इस प्रश्नके उत्तरकी बहुत अपेक्षा नहीं।

'ये भी अन्य कर्तव्योंके समान एक कर्तव्य हैं। इनका लक्ष्य भी वही पूर्णता है—शरीरसे निरपेक्षता! मनुष्य पूर्ण होनेके लिए आया है और वही उसका स्वास्थ्य है।' दोनोंने संतके सामने मस्तक झुका दिया। डाक्टर जान्सने जो समझा, मनुष्य उसे कब समझेगा। कौन कह सकता है।

शरीर ही मनुष्यका गृह है

'तुम साधु क्यों नहीं हो जाते ?' उनका स्नेह था मुझपर। वे सम्मान्य विद्वान् थे। उनके नामके साथ न्याय-सांख्य-वेदान्ततीर्थ लिखा जाता था। साधुओं का एक बड़ा समुदाय उनमें श्रद्धा रखता था। वे मण्डलीश्वर थे; क्योंकि महामहामण्डलेश्वर तो क्या, मण्डलेश्वरकी उपाधि भी उस समयतक प्रचलित नहीं हुई थी। सरलता, सौम्यता, सादगी प्रभृति सद्गुण उनमें पर्याप्त थे।

'नारायण! कपड़े रँगनेमें क्या रखा है ? इस चक्करमें तुम मत आना।' उनका भी मुझपर स्नेह था। वे भी संन्यासी थे, किंतु मण्डलीश्वर नहीं थे। उन मण्डलीश्वर-के मठसे कुछ दूर एक उजड़ा-सा उद्यान था, उसी उद्यान-की खँडहर-प्राय एक कुटिया उनका आवास थी। उनके नामके साथ कोई उपाधि नहीं थी। वे वेदान्तके विद्वान् तो थे; किंतु उनकी विशिष्टता विद्वत्तामें नहीं थी। त्यागकी मूर्ति थे वे। कुटियामें कुछ पुस्तकें, चटाई, कमण्डलु, कौपीन और टाटके टुकड़े—यही उनका समूचा संग्रह था।

ग्रीष्ममें एक महीने गङ्गाकिनारे आ जानेका नियम-सा बन गया था। मण्डलीश्वरका मठ मुझे आश्रय देता

था, भोजन देता था और विरक्त महापुरुषकी संनिधि मेरी श्रद्धाको सुपुष्ट करती थी। दोनों मेरे आदरणीय थे, दोनोंका वात्सल्य प्राप्त था मुझे।

'महाराज! अपनेमें मैं अभी साधु होनेकी योग्यता नहीं पाता!' मैं मण्डलीश्वरके वैभवकी उपेक्षा करके भी उनकी विद्या, उनकी सादगी एवं सद्‌गुण तथा उनके स्नेहका सम्मान करता था। उनके सम्मुख मुझे बोलनेमें संकोच होता था। आज भी उनके प्रति मेरे मनमें सम्मान है।

'आपकी कृपा है! मुझे अपने इन वस्त्रोंमें पूरा संतोष है।' महापुरुषके वात्सल्यने मुझे कुछ धृष्ट बना दिया था। वे आनन्द की मूर्ति! उनके सम्मुख तो संकोच स्वयं नहीं आ पाता था। उनका स्मरण आज भी मेरी श्रद्धाको सम्बल देता है।

'आप साधु हैं, आपने इतना वैभव क्यों एकत्र किया? इस विशाल मठसे आपको प्रयोजन?' मेरी अल्पज्ञताने मेरे मनमें ये प्रश्न अनेक बार उठाये। किंतु मण्डलीश्वर-जीके सम्मुख इन्हें पूछनेकी धृष्टता मुझमें कभी नहीं आयी।

'आप साधु हैं, ऐसी अवस्थामें साधुओंके यहाँ भिक्षा लेने क्यों जाते हैं?' उन वीतराग महात्मासे तो इससे भी अधिक धृष्टता की जा सकती थी, की जाती थी। वे खुलकर हँसते थे ऐसे प्रश्नोंपर। वे एक दिन एक ही बार भिक्षा ग्रहण करते थे और रात्रि-दिनमें केवल दो बार

जल पीते थे। भिक्षा वे संन्यासियोंके मठोंसे ले आते थे। एक दिन एक मठसे मिली भिक्षा पर्याप्त होती थी।

'नारायण!' मेरे प्रश्नके उत्तरमें उनका आनन्दहास्य उद्‌गत हुआ—'इतने विशाल गृह जिन्होंने बना रखे हैं, उन्हें तुम गृहस्थ क्यों नहीं कहते?'

'मैं हँसी कर रहा था, नारायण!' वे प्रायः सबको नारायण कहते थे। 'जब साधु संग्रही हो जाय—भले वह संग्रह सेवार्थ हो, तब उससे भिक्षा लेनेमें कोई दोष नहीं रह जाता!'

× × ×

'मुझे, मेरे बच्चोंको आश्रय चाहिए!' वे बहुत भटक चुके थे। किरायेका मकान—कोई टूटा खँड़हरतक नहीं मिल रहा था। किराया कहाँसे दिया जायगा, यह पीछे सोचनेकी बात थी। 'हम सबको आज दो दिनसे दाना नहीं मिला है।'

'आप सब पहले भोजन कर लें! किसीको एक-दो समय भोजन करा देना उतना कठिन नहीं है, जितना कठिन है उसे आजके समयमें आवास देना।

'मेरा पैतृक घर था, भूमि थी; किंतु दुर्भाग्य!' वे रो पड़े। असहाय, अनाश्रय एक परिवार रखनेवाला सद्-गृहस्थ क्या करे? उन्होंने बताया—'दस वर्ष पूर्व कोसीने वह सब ले लिया! इसी अनाथावस्थामें मैंने स्थान छोड़ा। कोसीसे दस मील दूर दूसरा घर बनाया। खेत

लिये, गृहस्थी जमायी । आजसे ३ वर्ष पूर्व कोसी वहाँ भी पहुँच गयी । उसने सब भूमि ले लिया । उसके पश्चात् मैं नैपालमें जा बसा था । कोसी दूर थी—वहाँसे बीस मील दूर; किंतु कोसी पिशाचिनी है । वह मेरे पीछे पड़ गयी है । इस बार उसने रात्रिमें अचानक आक्रमण किया । किसी प्रकार प्राण बच सके हैं ।'

कोसी—बिहारकी प्रलयङ्करी नदी कोसी प्रतिवर्ष वर्षामें कितने ग्राम उजाड़ती है, कितने प्राणियोंका बलिदान लेती है, कुछ ठिकाना है! उसकी बदलती धाराएँ—कब किस वर्ष वह किधर दस-बीस मीलका धावा मार देगी, कौन कह सकता है ।

मैं यहाँ सर्वथा अपरिचित हूँ । आप सबकी सद्भावना ही मेरी सहायिका है !' उन्हें, उनके बच्चोंको, पत्नीको आश्रय चाहिए । रहनेके लिए स्थान और करनेके लिए काम । करनेके लिए काम न होगा तो भोजन कहाँसे आयेगा ?

'ये सद्गृहस्थ आश्रयहीन हो गये हैं !' मेरे एक श्रद्धेयने उनकी व्यवस्था सम्हाल ली थी । एक सम्मानित सम्पन्न व्यक्तिसे उन्होंने चर्चा चला दी थी और अन्तमें आश्वासन मिल गया—'कुछ-न-कुछ प्रबन्ध हो जायगा । एक कमरा है अमुक गलीके मकानमें ; अच्छा तो नहीं है, परंतु अभी उसीसे काम चला लें ।'

'अब ये गृहस्थ तो हुए !' मैंने अपने उन श्रद्धेयसे सम्पन्न व्यक्तिके चले जानेपर हँसकर कहा ।

'गृहस्थ तो ये हैं ही।' उनका उत्तर भी सहास्य मिला—'गृहहीन हो जानेसे ये गृहस्थ नहीं थे, ऐसी बात तो नहीं है।' एक श्लोकार्द्ध कह दिया उन्होंने—

'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।'

मुझे स्मरण आ रहा है—काशीमें दशाश्वमेधघाटसे ऊपर एक तिकोना पार्क है। उसकी एक ओर भिक्षुकोंका समुदाय सदा पड़ा दीखता है। गङ्गा-स्नान करने जाते-आते लोगोंकी उदारता ही उनकी आजीविका है। वे भिक्षुक—वे प्रायः सब गृहस्थ हैं। वैसे उनके घरके नाम-पर कहीं एक चटाई भी नहीं टगी है। वहीं सड़कके फुटपाथपर उनका जन्म होता है, वहीं बढ़ते रहते हैं और वहीं मर जाते हैं। अवश्य वर्षामें उन्हें आस-पास किसी दूकानके छज्जेके नीचे भागना पड़ता है।

'इतने विशाल गृह जिन्होंने बना रखे हैं, वे गृहस्थ नहीं हैं?' मुझे वर्षों पूर्व सुना महापुरुषका वह परिहास स्मरण आ गया। मेरे मनने कहा—'नहीं, वे गृहस्थ नहीं हैं।' ये करालकालिका कोसीके आखेट सद्गृहस्थ और काशीके वे फुटपाथके भिक्षुक—कहाँ हैं इनके पास गृह? तब गृह होना गृहस्थका लक्षण कैसे हो सकता है?'

'हाँ, मेरे ही कहाँ गृह है। मुझसे जब कोई पूछता है, प्रायः लोग पूछते हैं—'आपका घर कहाँ है?' उन्हें क्या उत्तर दूँ? उन्हें कहाँ संतोष होता है इस उत्तरसे—'जब जहाँ रहूँ।' 'जन्मभूमि कहीं तो होगी?' मुझे इसमें अस्वीकृति कहाँ है; किंतु घर—अब वहाँ कोई घर तो

रहा नहीं है । अवश्य ही अभी किसी अन्यने वहाँ अपना घर नहीं बनाया है । कभी कोई घर यहाँ था, उस भूत-पूर्व कच्चे घरका स्मरण दो एक-स्थानोंपर फुट-दो-फुट ऊँची अबतक बची खँडहरकी भित्तियाँ दिला सकती हैं । इसे घर तो नहीं कहा जा सकता ?'

× × ×

'आप अपनेको किस आश्रममें मानते हैं ?' एक सुहृद्‌ने स्नेहपूर्वक पूछा ।

'गृहस्थ !' मेरा उत्तर उन्हें अटपटा लगता है ; किंतु मुझे उन महापुरुषकी बात स्मरण है—'नारायण ! साध बननेकी आवश्यकता नहीं है ।'

मेरे एक बाबा थे । मेरे पिताजीके चाचा लगते थे, इससे हम उन्हें बाबा कहते थे । पता नहीं यह कैसा सम्बन्ध था—मुझे अब स्मरण नहीं है । आयुमें वे पिता-जीसे दस वर्ष छोटे थे । हमारे घरके ठीक सामने उनका घर था । अबतक उनकी आकृति मुझे याद है । वैसे अब उनके घरके स्थानपर कोई और आ बसा है ।

सुदृढ़ शरीर, साँवला रंग, क्रोधी स्वभाव—अपने घर-में बाबा अकेले थे । उनका विवाह हुआ नहीं था । पर्याप्त बड़ी अवस्थातक वे अपने विवाहके लिए उत्सुक रहे—विवाह हो नहीं सका । क्यों नहीं हो सका, मैं कैसे बता सकता हूँ । उनकी जब मृत्यु हुई, मैं चौदह-पंद्रह वर्षसे बड़ा नहीं था ।

उनके दो बैल थे। बड़े कुशल माने जाते थे वे अपनी खेतीके कार्यमें। उनके क्रोधी स्वभावके कारण उनके समीप मैं प्राय: नहीं जाता था।

'मेरे वे बाबा गृहस्थ थे—आपको कोई आपत्ति है इस बातमें?' मैंने अपने उन सुहृदको इतनी कथा सुनाकर पूछा।

'नहीं!' उन्होंने स्वीकार किया। 'भारतके ग्रामोंमें ऐसे सैकड़ों-सहस्रों कहना चाहिए—लोग हैं जो अविवाहित हैं। फिर भी उन्हें गृहस्थ तो मानना ही पड़ेगा।'

'जो उपार्जन करके खाय, वह गृहस्थ और जो दानजीवी हो, वह साधु!' मैंने हँसते हुए परिभाषा कर दी—सच मानिये, यह सर्वथा परिहास है। इस अपूर्ण परिभाषाके आप पीछे पड़ेंगे तो चंदेपर चलनेवाली अनेक संस्थाओंके संचालक तथा कार्यकर्त्ता साधु सिद्ध हो जायँगे। वैसे मेरे वे सुहृद् इसी परिभाषासे संतुष्ट हो गये थे। मेरा पीछा छोड़ दिया उन्होंने—मुझे तो यही अभीष्ट था।

× × ×

'स्त्रीको ही गृह बता दिया, जैसे उसका कोई व्यक्तित्व ही नहीं!' उस दिन चला गया था एक सुप्रख्यात साधुके समीप। एक उज्ज्वल वस्त्रधारी सज्जन बड़े आवेशमें कह रहे थे—'नारीका कोई महत्त्व ही नहीं माना गया। वह भी एक सुविधाकी सामग्री बना दी गयी।'

'बात ऐसी नहीं है !' साधु सरलभावसे स्नेहपूर्वक समझा रहे थे। 'नारीका महत्त्व तो बहुत अधिक माना गया है। वह माता है—माताको कौन महत्व नहीं देगा ? देहासक्तिको दृढ़ करनेवाले साधन गृह कहे गये और इसीसे ईंट-पत्थरकी दीवारोंका घेरा गृह कहा जाता है। उनका निर्माण देहकी सुरक्षाके लिए होता है।'

'गृहका कोई विशेष अर्थ करते हैं आप ?' मैंने पूछ लिया।

'मनुष्य-शरीर ही गृह है।' मुझे उत्तर मिला।

'तब मनुष्य-शरीर ही क्यों ?' मेरा प्रश्न बना रहा—'पशु-पक्षी, देव-दानव, तृण-तरु, कीटादि समस्त शरीर क्यों नहीं ?'

'उनमें जीव कर्म-संस्कार ग्रहण नहीं करता।' साधु-का स्पष्ट उत्तर था। 'वे तो मनुष्य देहकी संतति हैं। यहींके कर्म-संस्कारोंकी उनमें भोग-परम्परा प्राप्त होती है।'

'तब सभी मनुष्य गृहस्थ हैं ?' इस बार उन सज्जन ने पूछा था। साधु-संन्यासी हैं, इस बातपर उनका प्रश्न व्यङ्ग करता लगता था।

'जबतक देहासक्तिका कोई अंश अवशिष्ट है, जीव देहमें स्थित है। इस प्रकार जबतक देहासक्ति है, मनुष्य गृहस्थ है।' साधुनें व्यंगपर ध्यान दिये बिना समझाया। 'यह देहासक्ति पुरुषकी नारीसे, नारीकी पुरुषसे दृढ़ होती

है—इसीलिए विवाहको गृहस्थाश्रम कह दिया गया। दीवारोंके घेरे भी इसीलिए गृह हैं कि वे अपने अधिपति-को अपनेमें आसक्त करके उसका देहाभिमान दृढ़ करते हैं।'

'मेरे बाबा गृहस्थ थे, बिना गृहिणीके होनेपर भी। वे कोसीके आक्रमणसे आक्रान्त सज्जन गृहस्थ थे, भले उनका कहीं कोई गृह न रह गया हो ! गृहस्थ—देहा-सक्त !' मैंने साधुको सादर सिर झुकाया !

कामना-पूर्तिसे सुखकी इच्छा ही दुःख है

'संसारमें सबसे अधिक दुःखी पोप है !' श्रोता काँप उठते थे, लूथरकी वाणी वज्रके समान सीधी और भयंकर चोट करती थी। उसके प्रत्येक शब्द पोप द्वारा प्रचारित पाखंडको छिन्न-भिन्न करनेवाले हथौड़े बनकर गिरते थे—'वह पैसेके लिए सारे समाजको धोखा दे रहा है ; किंतु स्वयं वह समझता है कि परमात्माको कोई धोखा नहीं दे सकता।'

'आपकी बात सच भी हो तो ··।' एक श्रोता सभामें उठ खड़ा हुआ था।

'सच भी हो तो—क्या मतलब ? सच ही है !' लूथरका घनघोष सुनायी पड़ा। पैसा देकर पापियोंके पापका क्षमापन-पत्र वह दिलाता है ! पोपको पैसा देनेसे परमात्मा तुम्हारे पाप क्षमा कर देगा—तुम क्या इतने मूर्ख हो कि परमात्माको घूसखोर मानो !'

'मैं दूसरी बात कह रहा था।' श्रोता अभी खड़ा ही था। 'पोप महान् दुःखी कैसे हैं। उनके पास क्या अभाव है ? उन्हें कोई शारीरिक क्लेश भी तो नहीं।'

'अच्छा !' लूथर खुलकर हँस पड़े—'तुमने सुना नहीं, तुम्हारे पोप रात्रिमें एक क्षण सो नहीं पाते। उन्होंने सैनिकोंकी संख्या दुगुनी कर दी है।'

'डाकुओंपर परमात्माका क्रोध उतरे !' महिलाओंमें-से अनेकोंने एक साथ शाप दिया। 'वे पूज्य पादरियोंको भी लूट लेते हैं और पोपको भी लूटनेपर तुले हैं।'

'उनके पास भी पोपका पाप-क्षमापनपत्र है। उन्होंने जन-साधारणसे कई गुने अधिक पैसे देकर उन्हें खरीदा है।' लूथरकी चोट बड़ी भयङ्कर थी 'स्वयं पोपने उस पत्रको मुद्राङ्कित किया है। उसमें लिखा है—'प्रभुने तुम्हारे सब पिछले पाप और वे पाप, जो तुम आगे करोगे, क्षमा कर दिये !'

'क्षमापन-पत्रमें अवश्य यह लिखा होगा।' महिलाओं-के ही नहीं, दूसरे भावुक श्रोताओंके मुख भी लटक गये। 'उसमें लिखा तो यही होता है। पोप महान् उसे मुद्राङ्कित करते हैं।'

'अब वे डाकू कुछ भी करनेके लिए स्वतंत्र हैं ! वे पोपको लूट सकते हैं, उसकी हत्या कर सकते हैं।' लूथर अग्नि-वर्षा करते जा रहे थे। 'वे मुझे और आप सबको मार सकते हैं। उन्हें कोई पाप नहीं होगा। उन्हें परमात्मा क्षमा कर देगा; क्योंकि पोपने उन्हें क्षमापन-पत्र दे दिया है। पोप तो परमात्माको भी आज्ञा दे सकते हैं।'

'झूठी बात ! बंद करो बकवास ! ऐसा कभी नहीं हो सकता !' श्रोता उत्तेजित हो उठे थे 'सर्वशक्तिमान् परमात्माको कोई आज्ञा नहीं दे सकता।'

'सज्जनो ! मैं आपके मतसे सर्वथा सहमत हूँ।' लूथर—शब्दोंके जादूगर लूथर मुस्कराते हुए कह रहे थे। 'सर्वशक्तिमान् परमात्माको कोई आज्ञा नहीं दे सकता। न पोप और न उनके अनुचर। इसीलिए क्षमापन-पत्र पाखण्ड है। उसे लेकर डाकू लूटने और हत्या करनेके अपराध से छूट नहीं सकते और हमारे-आपके पाप क्षमा नहीं हो जाते।'

शान्ति– निस्तब्ध शान्ति व्याप्त हो गयी सभामें। सूई गिरे तो उसका शब्द सुन लिया जाय। संत लूथरके शब्दोंके सत्य सीधे श्रोताओंके हृदयमें उतर गये थे।

'पाखण्ड स्वयं पाप है।' लूथर आगे बोल रहे थे। 'मुझे पता नहीं कि निर्णयके दिन इस घोर पापका प्रवर्तक कहाँ भेजा जायगा, उसे क्या दण्ड मिलेगा ; किंतु दण्ड तो वह अभी भोग रहा है। रुपया कैसे आये, कहाँसे आये रुपया—इस चिन्तासे वह अशान्त है। चिन्ताने उसे इतना दुखी कर दिया है कि उसको निद्रा लानेके लिए अपने चिकित्सकोंकी सहायता लेनी पड़ती है। स्वयं उस-पर परमात्माका अभिशाप उतर पड़ा है।'

× × ×

'मार्टिन लूथर मार डालने योग्य है !' पादरियोंका पूरा समुदाय विरोधी हो उठा था। 'वह पोपका विरोध

करता है। उसे चौराहेपर खड़ा करके पत्थरोंसे मारते हुए टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहिये।'

पूरे देशके पादरी शत्रु हो गये थे। पादरियोंके संकेत-पर चलनेवाली श्रद्धालु जनता भड़क उठी थी। समाजका उग्र एवं अवारा समुदाय सदासे धर्म-पुरोहितोंके हाथमें रहा है। पादरी प्रोत्साहित्त कर रहे थे इस वर्गको कि वे लूथरको पीड़ित करें। शासकोंमें भी समाजके धर्म-गुरुओं-का आदेश अस्वीकार करनेका साहस नहीं था। लूथर आज या कल बंदी बना लिये जायँगे—निश्चित जान पड़ने लगा।

'लूथर ! तुम इतने प्रसन्न क्यों हो ?' एक मित्रने ऐसे कठिन समयमें नित्य प्रफुल्ल लूथरसे पूछा। 'तुम कैसे इतने सुखी रह पाते हो ?'

'मुझे चाहिए क्या कि मैं चिंता करूँ ?' खुलकर हँसना लूथरका अपना स्वभाव है। अपने उसी निर्मल स्वभावसे हँसते हुए वे कह रहे थे—'चिन्ता ही दुःखकी जननी है। जो कुछ चाहेगा, वह दुःखी होगा। जितना चाहेगा पदार्थोंको, उतना दुःख पायेगा। मेरा पालक तो परमपिता परमात्मा है। वह दयामय है। मुझे जैसे चाहेगा, रखेगा। मुझे कुछ पाना है नहीं तो दुःख कहाँसे साहस पायेगा मेरा स्पर्श करनेका।'

'तुम कहते हो कि बाइबलका सर्वसाधारणको भाषाओंमें अनुवाद होना चाहिए ?' मित्रने एक दूसरा ही प्रश्न किया।

'यदि हमारा विश्वास हो कि बाइबल परमात्माका संदेश है, लूथर गंभीर हो गये—'तो हमें उसे समझना चाहिए। वह हमारी भाषामें न होगा तो हम उसे समझेंगे कैसे। लोग बाइबलके संदेशके अनुसार आचरण करें अथवा लोग बाइबलके वाक्योंको पढ़ें, भले आचरण उसके विरुद्ध करें—इन दोनोंमें कौन-सी बात श्रेष्ठ है, यह भी क्या तुम्हें समझना होगा ?'

'तुम्हें शैतानने अपने सब तर्क सौंप दिये हैं।' मित्र हँस पड़ा। वह आक्षेप नहीं कर रहा था। पादरी समुदाय जो बात लूथरके सम्बन्धमें लोगोंको सुनाता था, उसीको उसने हँसीमें कह दिया था।

'मनुष्यको बहका देना शैतानका स्वभाव है !' लूथर भी हँस पड़े। 'किंतु शैतानके तर्कोंसे देवदूतके तर्क दुर्बल नहीं हुआ करते। जब दोनोंके सम्मुख तर्क करनेका सुअवसर हो, विजयी तर्क देवदूतका होता है। एक बात और—शैतान अपनेको परमात्माका प्रतिनिधि बताकर लोगोंको बहकाता है, उन्हें अपना अनुगामी बननेको कहता है और देवदूत किसीको अपना अनुगामी नहीं बनाते। वे सबको सदा सीधे परमात्माके शरणापन्न होनेकी प्रेरणा देते हैं।'

'अच्छा, अब इन बातोंको छोड़ो ! मैं विशेष प्रयोजनसे तुम्हारे पास आया हूं।' मित्रने गंभीरतापूर्वक कहना प्रारम्भ किया। 'हमारे देवदूतको शैतान नष्ट करनेपर तुला है। तुम शीघ्र बन्दी बनाये जानेवाले हो। देश

छोड़कर आज ही तुम्हें प्रस्थान कर देना है। यात्राकी व्यवस्था हम लोगोंपर छोड़ दो।'

'परमात्मा जिसकी रक्षा करना चाहेगा, शैतान उसकी हानि करनेमें समर्थ नहीं हो सकेगा।' लूथर फिर हँस रहे थे। 'मेरे प्रति तुमलोगोंका प्रेम ही तुम्हें भयभीत कर रहा है ; किंतु मैं अपनी कर्म-भूमि छोड़कर अभी कहीं नहीं जाना चाहता।'

'तुम बंदी कर लिये जाओगे और वे तुम्हें मार डालेंगे !' मित्रके स्वरमें कातर अनुरोध था। 'अब परमात्माके लिए यहाँसे कुछ समयके लिए बाहर चले जाओ ! हठ मत करो।'

'मृत्यु इतनी भयानक नहीं है कि उसके भयसे कर्तव्यका त्याग किया जा सके।' लूथर अपने निश्चयपर स्थिर बने रहे। 'परमात्माकी इच्छा पूर्ण हो ! क्या प्रभु ईसाने हमें यह समझाया और स्वयं अपने आदर्शसे सिखलाया नहीं है ?'

× × ×

'यह पोपके पाप-क्षमापन पत्रको पाखण्ड कहता है।'

'यह पवित्र बाइबलका सभी भाषाओंमें अनुवाद करा देना चाहता है।'

'यह शैतानका समर्थक है ! पादरियोंका रोष पराकाष्ठापर पहुँच चुका था। मार्टिन लथर बन्दी बना

लिये गये थे। पादरी माँग कर रहे थे—'इसे प्राणदंड दिया जाय!'

लूथरके शिष्य और समर्थक भी यह आशा नहीं कर सकते थे कि उनको मुक्त कर दिया जायगा। उनकी बड़ी-से-बड़ी माँग इतनी थी—'लूथर मारा न जाय। उसे आजन्म कारावास दिया जाय।'

'तुम अपना अपराध स्वीकार करते हो?' पूछा गया लूथरसे।

'मैंने कोई अपराध नहीं किया।' लूथर निर्भय स्थिर खड़े थे। 'सत्यको स्पष्ट करना कोई अपराध नहीं है।'

'तुम्हारे ये अपराध!' न्यायाधीश स्वयं नहीं समझ पा रहे थे कि सचमुच लूथरने कोई अपराध किया भी है।

'पाप-क्षमापन-पत्र पाखण्ड है!' लूथरकी गम्भीर वाणी गूँजी। 'यदि ऐसा नहीं है तो क्या न्यायालय यह घोषणा करनेको उद्यत है कि जिनके पास पाप-क्षमापन-पत्र है या जो उसे प्राप्त कर लेंगे, उन्हें कुछ भी करनेकी स्वतंत्रता होगी, उन्हें उनके किसी कार्यका दण्ड नहीं दिया जायगा?'

'ऐसा कैसे सम्भव है!' न्यायाधीशने निकलनेका मार्ग निकाला। 'परमात्मासे पाप क्षमा करा देनेके लिए वे पत्र दिये जाते हैं।'

'परमपिता परमात्मा पहलेसे जिनके पाप क्षमा कर चुका' लूथरने व्यंग किया—वे निष्पाप नहीं हुए, यह आप

कहना चाहते हैं। आप उन्हें दण्ड देंगे जिन्हें प्रभु दण्डनीय नहीं मानता।'

न्यायालय तुम्हारे तर्क सुननेको प्रस्तुत नहीं है।' सत्ताका सहारा लेनेके अतिरिक्त अत्याचार—दुर्बल शासन-के पास ऐसी अवस्थामें और क्या आश्रय हो सकता था।

'जानता हूँ!' लूथरने एक तीक्ष्ण व्यंग और किया। 'न्यायालय तो परमपिताके संदेश समझा देनेपर भी प्रति-बन्ध रखना चाहता है। वह नहीं चाहता कि लोग अपनी भाषामें उसे पाकर समझ लें और उसका आचरण करें; वह केवल इतनी अनुमति दे सकता है कि लोग उसके अक्षरोंको रट लिया करें।'

'तुमने अपने अपराध स्वीकार कर लिये हैं!' न्यायाधीश विवश थे – कितनी विडम्बना थी वे न्याय करनेके लिए स्वतन्त्र नहीं थे। उनकी नियुक्ति एक निश्चित निर्धारित तन्त्रके अनुसार निर्णय करनेके लिए थी। उन्होंने अपनी पूरी क्षतमा घोषित की—'यदि तुम क्षमा माँग लो तो छोड़ दिये जा सकते हो।'

'क्षमा! किसलिए?' लूथर हँस पड़े। 'एक निरपराध पाखण्डका प्रसार करनेवाले वर्गसे क्षमा माँग ले!'

'तब तुम्हें प्राणदण्ड दिया जाता है!' न्यायाधीश उठ गये निर्णय सुनाकर। वे निर्णय ही सुना सकते थे, किसीको प्राणदण्ड देना उनकी शक्तिमें नहीं था। कम-से-कम लूथरको प्राणदण्ड तो वे और उनका शासनतन्त्र नहीं दे

सकता था – दे नहीं सका। कारागारसे लूथर निकल गये—कैसे निकल गये, एक रहस्य ही है।

× × ×

'पोप आपके शत्रु हो गये हैं!' अनेकों शुभचिन्तकोंने समय समयपर लूथको सूचना दी—आपको अधिक सावधान रहना चाहिए।'

अत्यन्त रोगाक्रान्त प्राणी चिड़चिड़ा हो जाता है। वह अपने चिकित्कको ही मारना चाहता है।' लूथर सच्चे दयार्द्र हृदयसे कहते थे। 'दुखी प्राणी दयाका पात्र है। उससे कैसा द्वेष और भय तो उससे क्या।'

'संत मार्टिन लूथर!' जनताने सत्यके सम्मुख सिर झुका दिया था। श्रद्धावनत समाजने लूथरके उपदेशोंका आदर करना प्रारम्भ कर दिया था। उन समदर्शीके आदर्श व्यापक बनने लगे थे।

'परमात्माकी कृपा-प्राप्तिकी कामना करो!' लूथरका प्रधान उपदेश था 'यह प्रभुत्व और सम्पत्ति वहींतक आदरणीय हैं, जहाँतक चित्त उन्हें प्रभुका प्रसाद समझे और प्रभुकी एवं दीनोंकी सेवामें उनका सद्व्यय होता रहे। अन्यथा वे शैतानके सहायक बन जाते हैं। वे 'अधिक पाओ' इस कामनाको बढ़ा देती है। कामनाओंसे सुख-प्र्प्तिकी अपेक्षा—यही तो दुःख है। इससे दयनीय कोई स्थिति नहीं कि मनुष्य स्वयं अपना दुख बढ़ाता जाय।'

इन कहानियोंके लेखक

श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र'

द्वारा विरचित

सांस्कृतिक कहानियाँ

क्रमशः प्रकाशित हो रहे

आगामी भागोंमें पढ़ें ।

श्रीकृष्ण-सन्देश

[आध्यात्मिक मासिक-पत्र]

श्रीकृष्ण-सन्देशका वर्ष जनवरीसे प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण-सन्देश प्रतिमास ८० पृष्ठ पाठ्य सामग्री देता है।

आप श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' की सशक्त लेखन-शैलीसे इस पुस्तकके द्वारा परिचित हो रहे हैं। श्रीकृष्ण-सन्देशमें श्री 'चक्र' द्वारा लिखित श्रीकृष्णचरित प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ और उन्हीं द्वारा लिखित 'श्रीरामचरित' प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ जा रहा है।

वार्षिक शुल्क— १० रुपया।

आजीवन शुल्क— १५१ रुपया।

सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक—
श्रीकृष्ण-सन्देश
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा-२८१००१

श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र' की अन्य पुस्तकें

भगवान वासुदेव—(श्रीकृष्णका मथुरा चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४०२, सजिल्द, मूल्य १०)५०

श्रीद्वारिकाधीश— (श्रीकृष्णका द्वारिका-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४००, सजिल्द, मूल्य १०)५०

शिव-चरित—डिमाई आ०, पृष्ठ ४२८, सजिल्द, मूल्य ११)२५

शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा—
डिमाई आकार, पृष्ठ २१२, सजिल्द, मूल्य ७)५०

हमारी संस्कृति—डिमाई आ०, पृ० २६०, सजिल्द, मूल्य ७)२५

कर्म-रहस्य— डिमाई आकार, पृष्ठ १८४, मूल्य ४)००

आञ्जनेयकी आत्मकथा—(श्रीहनुमान-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३१२, सजिल्द, मूल्य ६)००

[illegible]श्यामकी झाँकी—पाकेट आकार, पृष्ठ १९२, मूल्य २)००

सखा[illegible]ोंका कन्हैया—पाकेट आकार, पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

श्यामका स्वभाव— पाकेट आकार, पृष्ठ ९६, मूल्य १)२५

हमारे धर्मग्रन्थ— पाकेट आकार, पृष्ठ ६७, मूल्य १)००

हिन्दुओंके तीर्थ-स्थान— पाकेट आ०, पृष्ठ २७४, मूल्य ३)५०

शिव-स्मरण— पाकेट आकार, पृष्ठ ८५, मूल्य १)२५

दो आध्यात्मिक महाविभूतियोंके प्रेरक प्रसंग—
पाकेट आकार, पृष्ठ १८८, मूल्य २)५०

हमारे अवतार एवं देवी-देवता—
पाकेट आकार, पृष्ठ १०८, मूल्य १)५०

सांस्कृतिक कहानियाँ प्रत्येक भाग—
पाकेट आकार, पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

प्रेसमें—
१. श्रीराम-चरित २. सांस्कृतिक कहानियाँ—भाग ३

प्राप्ति-स्थान—
प्रकाशन विभाग, श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ,
मथुरा-२८१००१ (उ० प्र०)